अध्याय तीन

मोहन राकेश के नाटक साहित्य का परिचय - आषाढ का एक दिन
:- भावना और यथार्थ का द्वंद्व --:

`आषाढ का एक दिन' मोहन राकेश का पहला नाटक है, जो १९५८ ई.में प्रकाशित हुआ। इस नाटक के प्रकाशन ने नाट्य जगत् में धूम मचा दी। सही-गलत क्रिया-प्रतिक्रियाओं ने बडा ऊधम मचा दिया। नई प्रयोगधर्मिता अपनाकर राकेश ने नाट्य जगत् में नया और अनोखा मोड प्रस्थापित किया। सब की तह में छिपा राकेश का व्यक्तिगत और पारिवारिक व्यक्तित्व बार-बार किसी पात्र के जरिए अपनी मनोव्यथा प्रकट करता है। उनकी हर कृति में उनका अपना स्वयं भोगा हुआ जीवन झाँकता है। ऐतिहासिक कहे जानेवाले नाटकों में भी उनकी दृष्टि आधुनिक ही रही है। `आषाढ का एक दिन' के कालिदास का द्वंद्व राकेश का द्वंद्व है और राकेश का द्वंद्व कालिदास में प्रकट हुआ है।

`आषाढ का एक दिन' का कथानक कालिदास के जीवन और साहित्य सृष्टि के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों पर आधारित है। नाटक का आधार इतिहास है, परन्तु इतिहास को साहित्य में ग्रहण करने का लेखक का अपना एक निजी दृष्टिकोण है। `इतिहास या ऐतिहासिक व्यक्तित्व का आश्रय साहित्य को इतिहास नहीं बना देता। इतिहास तथ्यों का संकलन करता है। ...साहित्य का ऐसा उद्देश्य कभी नहीं रहा। इतिहास के रिक्त कोष्ठों की पूर्ति करना भी साहित्य का उपलब्धि क्षेत्र नहीं है। ... यह निर्माण रुढिगत अर्थ में इतिहास नहीं है।'[१] आलोचकों द्वारा कथानक की सत्यता पर अनेक आरोप-प्रत्यारोप हुए, लेकिन राकेश ने सीमित अर्थ में अर्थात् केवल ऐतिहासिक सन्दर्भ में कालिदास को प्रस्तुत नहीं किया। यह ऐतिहासिक परिवेश में आधुनिक युगबोध है। `कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक व्यक्तित्वों का प्रतीक है।'[२] सृजन की सार्वकालिक भावना का प्रतीक कालिदास है। यह भावना

---

१ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश, पहली भूमिका - पृ.९- १९८३

२ मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रस्तोगी - पृ.८

विशिष्ट नहीं तो सर्व व्याप्त है।' जो आषाढ का एक दिन नाटक को और उसके नायक कालिदास को ऐतिहासिक नाटक और ऐतिहासिक व्यक्तित्व समझकर ही देखेंगे वह उनकी एक नितांत भ्रामक दृष्टि होगी और उनका नाटक की आत्मातक, मौलिकता तक पहुँचना भी मुश्किल होगा।[1]' आधुनिक जीवन से जुडे इस नाटक में जीवन की यथार्थपरक सौंदर्यवादी दृष्टि से व्याख्या की है। राकेश ने लिखा है -- ' मैं अपने बारे में तो निश्चित रुप से कह सकता हूँ कि मैं ने एक शब्द भी ऐसा नहीं लिखा है, जो वर्तमान से सम्बन्धित नहीं है।[2]' इस प्रकार' आषाढ का एक दिन' आधुनिक सन्दर्भ में इतिहास से कुछ साम्य रखती हुई पूर्णत: नए रुप में उपजी नाट्यकृति है। तीन अंकोंवाले इस नाटक का कथानक रोमानी और भावपूर्ण है। इस नाटक की कथावस्तु की गढन में परंपरा का मोह परिलक्षित होता है तथा अस्तित्ववादी दर्शन की चर्चा भी इसमें अंशमात्र दिखाई देती है। आधुनिक मानव के द्वंद्व और जटिलता को पकडकर राकेश ने यह नाटक लिखा है।

नाटक की कथा का प्रारंभ 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' के हल्के-हल्के मेघगर्जन तथा वर्षा के शब्द से होता है। ग्राम्यांचल के एक साधारण प्रकोष्ठ में, अपने ही विचारों में मग्न तथा चिंतित अम्बिका छाज में धान पटक रही है। इतने में आषाढ की धारासार वर्षा में अपने प्रिय के साथ भीगकर गीले वस्त्रों में काँपती-सिमटती, ठिठकती मल्लिका प्रकोष्ठ में प्रवेश करती है। वह कालिदास से प्रेम करती है, कालिदास के साथ स्वच्छंद रुप से घूमती है। आज भी वह कालिदास के साथ घूमकर प्रेम रस में अंतर्बाह्य स्नात होकर आई है। समाज में मल्लिका और कालिदास के सम्बन्ध को लेकर बहुत सारे अपवाद फैले हुए हैं, जिससे अम्बिका बहुत चिन्तित हुई है। उसे मल्लिका का इस प्रकार स्वच्छन्द होकर घूमना बिल्कुल पसन्द नहीं है। इसलिए वह कभी कभी उदास हो जाती है, लेकिन वह यह भूल जाती है कि मल्लिका के जीवन में अभी-अभी वसंत ऋतु छा रही है। कालिदास की प्रेयसी,

---

१ मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रस्तोगी - पृ.६५

१,२ मोहन राकेश साहित्य और सांस्कृतिक दृष्टि - पृ.१६४

मल्लिका एक सीधी-सादी भावुक नारी है। उन्होंने एक भावना का वरण किया है। कालिदास के साथ बने सम्बन्धों को वह सब सम्बन्धों से बडा मानती है। मात्र कालिदास के व्यक्तित्व को पूर्ण देखने की उसकी केवल एक ही आकांक्षा है। खुद को समर्पित कर कालिदास को महान कवि बनाने के सपने वह देख रही है। इसलिए उसके विवाह के सम्बन्ध में अम्बिका जो सोच रही है, उसका वह विरोध करती है।

अम्बिका कालिदास से घृणा करती है, क्योंकि वह जानती है, कि यह भावना, जो मल्लिका को कोमल, पवित्र और अनश्वर लगती है, केवल छलना और आत्मप्रवंचना है। अम्बिका मल्लिका को समझाती है, कि भावना से जीवन की आवश्यकताएँ तो पूरी नहीं होती। इसपर भावना और प्रेम को जीवन में अतिरिक्त स्थान देनेवाली मल्लिका माँ से कहती है "जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ ही तो सब कुछ नहीं है, माँ। उनके अतिरिक्त भी तो बहुत कुछ है।"[१] इसी वार्तालाप के बीच कालिदास एक आहत हरिणशावक को लेकर प्रवेश करता है। मल्लिका आहत हरिणशावक को देखकर चिन्तित हो जाती है। मल्लिका का लायां हुआ गर्म दूध अपने हाथ में लेकर कालिदास हरिणशावक को पिलाने लगता है। इतने में राज्य कर्मचारी दन्तुल प्रवेश कर हरिणशावक पर अपना अधिकार बताता है, क्योंकि उसने हरिणशावक को आहत किया है। कालिदास हरिणशावक को लेकर घर से बाहर चला जाता है। फिर भी दन्तुल हरिणशावक को प्राप्त करने का हठ नहीं छोडता है। वह तलवार की मूठपर हाथ रखकर कालिदास के पीछे जाने लगता है, तब मल्लिका उसे रोकती है। मल्लिका के मुख से कालिदास का नाम सुनते ही दन्तुल अपने किए पर पछताता है, क्योंकि कवि कालिदास की तलाश के लिए ही उसे राज्य की ओर से भेजा गया है। सम्राट ने कालिदास का "ऋतु-संहार" पढा है, उसकी भूरि-भूरि सराहना भी की है। इस लिए उज्जयिनी का राज्य आज उनका सम्मान करना चाहता है और उन्हें राजकवि का आसन देने के लिए उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

---

१ आषाढ का एक दिन - मोहन राकेश - पृ. १३

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

दन्तुल के मुख से कालिदास की ख्याति और सम्मान की बात सुनकर मल्लिका हर्षभरित हो जाती है। इतने में मातुल आक्रोश करता हुआ प्रवेश करता है, जिससे नाटक एक नए मोड पर गतिमान होता है। राज्य कालिदास को राजकवि का आसन देना चाहता है। इसलिए कालिदास को बुलाने के लिए राज्य की ओर से आचार्य आए हैं, परन्तु कालिदास उज्जयिनी जाने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि वह राजकीय मुद्राओं से क्रीत होना नहीं चाहता है। इसलिए सम्मान की बात सुनते ही वह घर से बाहर चला जाता है और जगदम्बा के मन्दिर में जाकर बैठता है। निक्षेप आकर मल्लिका से कहता है, कि कालिदास अपना हठ छोडकर उज्जयिनी जाएँगे, तो सिर्फ मल्लिका के अनुरोध से ही। इससे मल्लिका सचेत होती है। वह मन से चाहती है, कि कालिदास को राजकवि का सम्मान प्राप्त हो। इसलिए वह माँ के मना करने पर भी निक्षेप के साथ कालिदास के पास चली जाती है। विलोम आकर अम्बिका के दु:ख की तीव्रता बढाता है और उसे कालिदास के उज्जयिनी जाने से पहले कालिदास के साथ मल्लिका का विवाह करने की सलाह देता है। कालिदास के आने पर मल्लिका के विवाह को लेकर कालिदास और विलोम में काफी अनबन चलती है। मल्लिका उसका विरोध करती है। अत: विलोम चला जाता है। कालिदास मल्लिका को उज्जयिनी जाने का वचन पहले ही दे चुका है, इसलिए वह ग्राम-प्रदेश छोडने की इच्छा न होते हुए भी मल्लिका से शुभकामनाएँ लेकर उज्जयिनी की ओर प्रस्थान करता है। कालिदास के चले जाने से मल्लिका और अम्बिका दोनों भी आहत हो जाती हैं। मल्लिका सिसक उठती है। उसकी आँखें बरसने लगती हैं, लेकिन ये आँसू सुख के हैं। यहाँ पहला अंक समाप्त होता है।

पहले और दूसरे अंक के बीच कई वर्षों का अन्तराल है। दूसरे अंक में दर्शित मल्लिका के घर और उसकी अवस्था को देखकर अन्तराल का परिचय मिलता है। मल्लिका माँ के लिए दवा बना रही है। इतने में निक्षेप आता है। निक्षेप और मल्लिका के बीच चले वार्तालाप से अम्बिका की दीर्घ बीमारी और उज्जयिनी से कालिदास का कोई समाचार न आने का पता लग जाता है।

उज्जयिनी जाने के बाद कालिदास ने दो नए काव्यों -'कुमार - सम्भव' और 'मेघदूत'- की रचना की है, जिसकी प्रतियाँ मल्लिका ने व्यवसायी द्वारा प्राप्त की है। उज्जयिनी की रंगशालाओं में कालिदास के नाटकों का अभिनय भी हुआ है। निदोप की बातों से मल्लिका को मालूम होता है कि कालिदास ने गुप्त वंश की राजकन्या प्रियंगुमंजरी से विवाह कर लिया है। यह सुनकर मल्लिका अपने मन में मसोस कर रह जाती है, लेकिन स्पष्ट रूप से कहती है, कि वह एक साधारण युवती है, कालिदास असाधारण है और असाधारण व्यक्ति को जीवन में असाधारण का ही साथ चाहिए। कालिदास की उन्नति को देखकर वह सोचती है, कि निदोप के कहने पर यदि वह कालिदास को उज्जयिनी जाने के लिए प्रेरित न करती, तो कितनी बडी क्षति होती।

ग्राम-प्रान्तर में फिर से वहीं अनिष्टकारी आकृतियाँ दिखाई दे रही है, यह सुनकर मल्लिका अपने भाव को दबाकर हँसने का नाटक करती है और निदोप से कहती है, "माँ कहती है कि जब भी ये आकृतियाँ दिखाई देती हैं कोई-न-कोई अनिष्ट होता है। कभी युध्द, कभी महामारी ... परन्तु पिछली बार तो ऐसा कुछ नहीं हुआ। ... और जो हुआ, वह तो अच्छा ही था।"[१] पिछली बार जब ये आकृतियाँ दिखाई दे रही थीं, तब एक हरिणशावक किसी के बाण से आहत हुआ था। और कालिदास के सम्बन्ध में तो अच्छा ही हुआ, उन्हें उज्जयिनी के राजकवि का सम्मान मिला, परंतु कालिदास के जाने से मल्लिका और अम्बिका दोनों भी आहत हो गई थीं। इसी बीच निदोप को और एक आकृति घोडे पर बैठकर पर्वत शिखर की ओर जाती दिखाई देती है और जब वह कहता है कि वह कालिदास है, तब मल्लिका स्तंम्भित रह जाती है। निदोप चला जाता है। मल्लिका इसी सोच में डूब जाती है, कि कालिदास आए हैं और पर्वत-शिखर की ओर गए है। यहाँ नहीं आए। कालिदास अपनी पत्नी प्रियंगुमंजरी और रंगिनी, संगिनी, अनुस्वार, अनुनासिक के साथ ग्राम में आए है और मल्लिका के यहाँ बिना आए पर्वत की ओर चले गए, यह जान कर मल्लिका तिलमिला उठती है।

---

१ आषाढ का एक दिन - मोहन राकेश -- पृ.५३-५४

रंगिनी, संगिनी कालिदास की जन्मभूमि का अध्ययन करने आई है, जिसके लिए वे मल्लिका से बातें करती हैं, लेकिन शोध के लिए कोई भी नई चीज़ उन्हें नहीं मिलती है। और वे खाली हाथ वापस जाती है। शोध करने के लिए जो शोध दृष्टि शोधकर्ता के पास होनी चाहिए, वह उनके पास नहीं है। यहाँ लेखक ने आधुनिक शोध कर्ताओं के प्रति करारा व्यंग्य किया है। उसके बाद मल्लिका फिर सोच में डूब जाती है, ' आज वर्षों के बाद तुम लौटकर आए हो। सोचती थी, तुम आओगे तो उसी तरह मेघ घिरे होंगे, वैसा ही अन्धेरा-सा दिन होगा, वैसे ही एक बार वर्षा में भीगूँगी और तुम्हें कहूँगी कि देखो, मैं ने तुम्हारी सब रचनाएँ पढी हैं .... परन्तु आज तुम आए हो तो वातावरण ही और है। और ... और नहीं सोच पा रही कि तुम भी वही हो या ....? ' कहीं बदल गए हो ?[१]

इसी बीच अनुस्वार, अनुनासिक आते हैं और उनके मुख से वह समझता है कि कालिदास सचमुच ही बदल गए है, उनका नाम भी मातृगुप्त हो गया है और वे काश्मीर का शासन सम्हालने जा रहे हैं। कालिदास की पत्नी प्रियंगुमंजरी मल्लिका से मिलने आ रही है इसकी सूचना देने के लिए अनुस्वार और अनुनासिक आए हैं और उसके लिए मल्लिका के घर के वस्तु-विन्यास में कुछ परिवर्तन करना चाहते हैं। लेकिन बहुत प्रयास करने के बाद भी वस्तु विन्यास में बिना कुछ परिवर्तन किए वापस चले जाते हैं। यहाँ लेखक ने प्रशासन के अकर्मण्य कर्मचारियों की वस्तु-स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है। अनुस्वार, अनुनासिक के चले जाने के बाद प्रियंगुमंजरी मल्लिका के यहाँ आती है। वह कहती है, कि कालिदास जब भी ग्राम-प्रान्तर की चर्चा करने लगते हैं, तब भावविभोर हो जाया करते है, जिससे राजनीतिक कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है। वह अनुभव करती है कि राजनीति साहित्यकार के बस की नहीं है। वह कालिदास से जान चुकी है, कि मल्लिका कालिदास की बचपन से संगिनी रही है। उसे कालिदास की रचनाओं के प्रति मोह है और वह उनकी रचनाओं को बडे प्रयास से प्राप्त कर चुकी है। यह देखकर उसे

---

१ आषाढ का एक दिन - मोहन राकेश - पृ.५८-५९

ईर्ष्या भी होती है। वह काश्मीर जाने से पहले वहाँ के वातावरण को साथ ले जाना चाहती है। प्रियंगु वहाँ के सृष्टिसौंदर्य को देखकर भावविभोर हो जाती है। अत: मल्लिका प्रियंगु को कुछ दिन के लिए वहाँ रहने के लिए कहती है। परंतु प्रियंगुमंजरी कहती है, 'परन्तु इतना अवकाश कहाँ है ? काश्मीर की राजनीति इतनी अस्थिर है, कि हमारा एक एक दिन वहाँ से दूर रहना कई-कई समस्याओं को जन्म दे सकता है।'[१] प्रियंगुमंजरी के इस कथन से वर्तमान राजनीतिक समस्या पर प्रकाश पड जाता है।

प्रियंगुमंजरी जाने से पहले मल्लिका के जर्जर घर का परिसंस्कार करना चाहती है, लेकिन मल्लिका इस प्रस्ताव को ठुकराती है। प्रियंगुमंजरी मल्लिका को अपने साथ ले जाना चाहती है, परंतु मल्लिका अपने को ऐसे गौरव के अधिकारिणी नहीं समझाती। प्रियंगुमंजरी मल्लिका को किसी राज्याधिकारियों से विवाह करने की सलाह देती है। जिससे मल्लिका को मर्मांतक चोट पहुँचती है। इस प्रस्ताव को सुनकर अम्बिका आहत हो जाती है, मल्लिका भी आहत होकर केवल इतना ही कहती है, कि 'इस विषय की चर्चा छोड दीजिए'[२]। कुछ देर के बाद प्रियंगुमंजरी चली जाती है। उसके बाद विलोम आता है। वह कालिदास के सम्बन्ध में बातें कर रहा है। उसकी बातों से मल्लिका जान जाती है, कि कालिदास घोडे पर बैठकर पर्वत की ओर से उस ओर आ रहे हैं। इसलिए वह विलोम को वहाँ से जाने के लिए कहती है, परन्तु वह जाना नहीं चाहता है। इतने में घोडे के टापों की आवाज पास आकर फिर दूर चली जाती है। जिससे कालिदास से मिलने के लिए उत्सुक मल्लिका निराश हो जाती है। मल्लिका रो पडती है, जिसे देखकर अम्बिका कहती है, 'अब भी रोती हो ? उसके लिए ? उस व्यक्ति के लिए जिसने ....[३] ? तुमको धोखा दिया है। इस प्रकार की करुण स्थिति में दूसरा अंक समाप्त हो जाता है।

---

१ आषाढ का एक दिन - मोहन राकेश - पृ.६८

२ -वही- पृ.७३

३ आषाढ का एक दिन - मोहन राकेश पृ.८६

दूसरे अंक की तरह नाटक का तीसरा अंक भी कुछ वर्षों बाद की कहानी से प्रारम्भ होता है। इस अंक में मल्लिका रोमानी दुनिया से उतरकर यथार्थ की भूमिपर चल रही दिखाई देती है। मल्लिका की माँ अम्बिका का स्वर्गवास हो गया है। मातुल राजप्रासाद की हवा से उबकर, बैसाखी के सहारे चलकर मल्लिका के घर शरण माँगने आया है। मातुल काश्मीर का समाचार बतलाते हुए मल्लिका से कहता है, 'समाचार यह है, कि सम्राट का निधन हो गया है। काश्मीर में विरोधी शक्तियाँ सिर उठा रही है। वहीं से आए एक आहत सैनिक का कहना है कि ... कि कालिदास ने काश्मीर छोड दिया है ? .... वहाँ के लोगों का तो कहना है, कि उसने संन्यास ले लिया है और काशी चला गया है।'[१] यह सुनकर मल्लिका ग्रंथ को आसन से उठाकर वक्ष से लगा लेती है और स्तम्भित रह जाती है, सोच में डूब जाती है। 'तुमने संन्यास नहीं लिया। मैं ने इसलिए तुमसे यहाँ से जाने के लिए नहीं कहा था। .... मैं ने इसलिए भी नहीं कहा था, कि तुम जाकर कहीं का शासन भार संभालो। फिर भी जब तुमने ऐसा किया, मैं ने तुम्हें शुभकामनाएँ दी - यद्यपि प्रत्यक्ष तुमने ये शुभकामनाएँ ग्रहण नहीं की। ... मैं यद्यपि तुम्हारे जीवन में नहीं रही, परन्तु तुम मेरे जीवन में सदा बने रहे हो। मैं ने कभी तुम्हें अपने से दूर नहीं होने दिया। तुम रचना करते रहे और मैं समझती रही कि मैं सार्थक हूँ, मेरे जीवन की भी कुछ उपलब्धि है। ... मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बन रहे हो। क्योंकि मैं अपने को अपने में न देखकर तुममें देखती थी। और आज यह सुन रही हूँ, तुम सब छोडकर संन्यास ले रहे हो ? तटस्थ हो रहे हो ? उदासीन ? मुझे मेरी सत्ता के बोध से इस तरह वंचित कर दोगे ?'[२]

मातृगुप्त के कलेवर से मुक्त होकर, दात-विदात-सा, कई दिनों की यात्रा करके थका, टूटा-हारा हुआ कालिदास मल्लिका के द्वार पर खडा है। आज भी वही आषाढ की वर्षा का दिन है, जिस दिन नाटक की शुरुआत हुई थी। मल्लिका सोच रही है, कि वही आषाढ का दिन है। उसी तरह मेघ बरस रहे है।

---

१ आषाढ का एक दिन - मोहन राकेश - पृ.९१

२ - वही - पृ.९४

वैसे ही वर्षा हो रही है। वहीं मैं हूँ। उसी घर में हूँ। किन्तु ...[1] तुम नहीं हो और किवाड खुलने के शब्द से मल्लिका उस ओर देखती है। कालिदास अन्दर आता है, लेकिन कालिदास की क्षत-विक्षत स्थिति को देखकर उसे विश्वास ही नहीं होता, कि वह कालिदास है। दोनों एक-दूसरे में भारी परिवर्तन देखते हैं। कालिदास इस आशा से आया है, सब कुछ वैसा ही यथास्थान होगा, परंतु वह अनुभव करता है, कि सब में परिवर्तन हुआ है और उसका जिम्मेदार कालिदास ही है। कालिदास कहता है, कि 'एक आकर्षण सदा मुझे उस सूत्र की ओर खींचता था, जिसे तोडकर मैं यहाँ से गया था।' वही कालिदास को आज यहाँ खींचा लाया है, परंतु अब वह सूत्र जुडनेवाला नहीं है। क्योंकि समय ने काफी छलाँग मारी है। यहाँ भी निक्षेप का सूत्रवाक्य खरा उतरा है कि, 'अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता[2]।'

उज्जयिनी जाते समय कालिदास के मन में एक आशंका थी, जिसको कालिदास ने तीसरे अंक में स्पष्ट किया है - 'मैं यहाँ से क्यों नहीं जाना चाहता था ? एक कारण यह भी था कि मुझे अपने पर विश्वास नहीं था। मैं नहीं जानता था, कि अभाव और भर्त्सना का जीवन व्यतीत करने के बाद प्रतिष्ठा और सम्मान के वातावरण में जाकर मैं कैसा अनुभव करूँगा। मन में कहीं यह आशंका थी, कि वह वातावरण मुझे छा लेगा और मेरे जीवन की दिशा बदल देगा ... और यह आशंका निराधार नहीं थी[3]।' नए वातावरण में कालिदास सुखी नहीं हो सका। काश्मीर जाते समय वह मल्लिका से मिलने नहीं आया था, क्योंकि उसे भय था, कि मल्लिका की आँखें उसके अस्थिर मन को और अस्थिर कर देंगी। इससे वह बचना चाहता था। परंतु मल्लिका कालिदास की उन्नति में कभी भी बाधा नहीं बनना चाहती। मल्लिका ने अपने हाथों से पन्ने बनाकर सीकर रखे थे। वह चाहती थी कि काश्मीर जाते समय कालिदास वहाँ आएँगे। तो उन्हें वह

---

१ आषाढ का एक दिन - मोहन राकेश - पृ.९५
२ - वही - पृ.३४
३ - वही - पृ.९९

मैट देगी, जिस पर कालिदास अपने सबसे बड़े महाकाव्य की रचना करेंगे। उसे देखकर कालिदास ने यह अनुभव किया, कि उन पृष्ठों पर पहले से ही एक अनंत सर्गों के महाकाव्य की रचना हुई है। अन्त में कालिदास हारकर अपनी भूल का अनुभव कर रहे हैं और सोचते हैं कि इसके आगे भी जिन्दगी शेष है। वे मल्लिका के पास फिर से अथ से शुरुआत करने की कामना करते हैं। इसी बीच मल्लिका के वर्तमान (बच्ची) के रोने की आवाज आती है, जिसे सुनकर कालिदास हतप्रभ हो जाते हैं। इतने में विलोम आता है और नाटक का वातावरण एक नया मोड़ लेता है। वह कालिदास को कटु शब्द सुनाता है जिससे कालिदास तिलमिला उठता है। विलोम यह अनुभव करता है, कि उसके लिए खुला होते हुए भी घर का द्वार सदा के लिए बन्द है और कालिदास के लिए द्वार बंद होते हुए भी सदा के लिए खुला है। इसलिए वह जब-जब कभी मल्लिका के द्वार पर आता है, खोलो द्वार की पुकार लगाता है। कालिदास फिर से 'अथ' से आरम्भ करना चाहता है, परंतु कर नहीं सकता, क्योंकि जिस द्वार से शुरुआत करनी चाहिए, वह द्वार ही उसके लिए बन्द हो गया है। क्योंकि अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता है। इसलिए कालिदास नई जगह शरण तलाशने के लिए वहाँ से भाग जाता है। इस तरह नाटक का अन्त करुण हो जाता है।

निष्कर्ष --

इस प्रकार मोहन राकेश ने यहाँ दो विरोधी परिस्थितियों के बीच छटपटाती नारी का चित्र प्रस्तुत किया है। पुरुष की अहंवृत्ति का शिकार बनी नारी की दयनीय अवस्था को लेखक ने यहाँ प्रस्तुत किया है तथा राज्याश्रय साहित्यकार की प्रतिभा को कुण्ठित करता है, यह भी सूचित किया है। लेखकने यहाँ और भी एक तथ्य मल्लिका के मुँह से बताया है, कि दारिद्रय एक ऐसा कलंक है, जो कभी भी मिट नहीं सकता। मल्लिका कालिदास से कहती है, 'तुमने लिखा था कि एक दोष गुणों के समूह में उसी तरह छिप जाता है, जैसे चाँद की किरणों

में कलंक, परन्तु दारिद्र्य नहीं छिपता सौ-सौ गुणों मे भी नहीं छिपता । नहीं, छिपता ही नहीं, सौ-सौ गुणों को छा लेता है - एक एक करके नष्ट कर देता है।'

लहरों के राजहंस

-- पार्थिव और अपार्थिव का संघर्ष --

'लहरों के राजहंस' मोहन राकेश का आरम्भ की दृष्टि से पहला और प्रकाशन तथा रचना विधान की दृष्टि से दूसरा नाटक, अर्थात् 'आषाढ का एक दिन' की अगली कडी है । राकेश ने इस नाटक का ताना-बाना अश्वघोष के 'सौन्दरनन्द' काव्य के आधार पर बुना है । यह मूल काव्य भी ऐतिहासिकता की अपेक्षा कल्पना पर ही आधारित है । अश्वघोष ने संस्कृत और पाली साहित्य में उपलब्ध कथा को कल्पना के आधार पर विस्तारित किया है, जिसे मोहन राकेश ने ऐतिहासिक तथ्यों पर बिना ध्यान दिए, काल्पनिक अन्विति से विस्तार दिया है । नाटक की कथा का केन्द्र मूलत: नन्द और सुन्दरी है, जो नाम-मात्र ऐतिहासिक है, परंतु आज के सन्दर्भ में नितान्त आधुनिक है, क्योंकि राकेश ने इन पात्रों के व्दारा आज के मानव की बेचैनी, विवशता और आन्तरिक संघर्ष को प्रकट किया है ।

'लहरों के राजहंस' नाटक की रचना के सम्बन्ध में राकेश ने स्वयं लिखा है, 'बहुत पहले से एक बिम्ब मन में था । दो दीपाधार । एक ऊँचा, शिखर पर पुरुष मूर्ति - बाँहें फैली हुई तथा आँखें आकाश की ओर उठी हुई । दूसरा छोटा, शिखर पर नारी मूर्ति - बाँहें सिमटी हुई तथा आँखें धरती की ओर झुकी हुई ।

पहले पहल शायद अश्वघोष का सौन्दरनन्द पढते हुए यह बिम्ब मन में बनने लगा था । क्यों और कैसे, यह कहसकना असम्भव है । उस काव्य का अपना बिम्ब तरंगों पर तैरते राजहंस का है, या अनिश्चय में उठे-रुके एक पैर का । परंतु मेरे लिए यह सब धुंधला दृश्य था । स्पष्ट थे दो दीपाधार, जो सौंदरानन्द

8614
A.

में नहीं थे।[१] ' ' लहरों के राजहंस' नाटक में इन दो बिम्बों को उभारा गया है। यहाँ दो दीपाधारों के शिखरों पर पुरुष और नारी मूर्ति स्थापित है। यह पुरुष और नारी मूर्ति का बिम्ब राकेश का अपना है। और लहरों पर तैरते राजहंस का बिम्ब सौन्दरनन्द काव्य से लिया गया है। सौन्दरनन्द काव्य को पढते हुए राकेश के मन में जो बिम्ब बनने लगा था, उसे उन्होंने १९४६-४७ में कहानी का रुप दिया। ' लहरों के राजहंस ' नाटक के चार पात्र - नंद, सुन्दरी, अलका और मैत्रेय इस कहानी में भी थे। ' नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है, तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुध्द बना देता है ' - सुन्दरी का यह कथन भी इस कहानी में था, लेकिन यह कहानी राकेश को इतनी अधूरी लगी, कि प्रकाशित नहीं हुई। उसके बाद राकेश ने इस कहानी का' सुन्दरी' नाम से रेडिओ नाटक के रुप में रुपान्तरित किया। इसका रेडिओ पर प्रसारण भी हुआ, परंतु राकेश का साहित्यिक मन असन्तुष्ट रहा। फिर सात-आठ साल ऐसे ही बीत गए, बाद में इसी रेडिओ नाटक को जालन्धर रेडिओ के लिए ' रात बीतने तक' शीर्षक से फिर से लिखा। इस समय भी राकेश को चरित्रों में असन्तुलन और बनावट में अधूरापन महसूस हुआ। अत: अन्त में राकेश ने उसे' लहरों के राजहंस ' नामक नाटक के रुप में तथा सर्वथा नए रुप में प्रकाशित किया। इस प्रकार' रात बीतने तक ' को' लहरों के राजहंस ' का' बीज नाटक कहा जा सकता है। ' ' लहरों के राजहंस' नाटक का पहली बार प्रकाशन सन १९६३ में हुआ। ' यद्यपि इस नाटक की चरित्र और उद्देश्य सम्बन्धी दुर्बलता को दूर करने के लिए इसका दूसरी बार सन १९६५ में संशोधित प्रकाशन हुआ, तथापि कुछ शिल्पगत दुर्बलताओं के कारण राकेश की अन्य दो प्रसिध्द नाटय-रचनाओं ' आषाढ का एक दिन' और' आधे - अधूरे' में यह एक दुर्बल कडी बन कर रह गया है। यहाँ भी अतीत के माध्यम से सम-सामयिक युग के मानव की उलझन और आत्म-संघर्ष को सम्प्रेषित करने का प्रयत्न किया गया है।[२] '

---

१ लहरों के राजहंस - भूमिका - मोहन राकेश - पृ.११

२ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - मोहन राकेश के विशेष - सन्दर्भ में - डॉ.रीता कुमार - पृ.३०२

यद्यपि मनुष्य के मन में अनादिकाल से ही अपार्थिव मूल्यों के प्रति स्वाभाविक आकर्षण रहा है, तथापि भौतिक जगत् के आकर्षणों भी उसे जकड़कर रखा है, अर्थात् पार्थिव मूल्य भी उसे मुक्त नहीं होने देते। पार्थिव-अपार्थिव में से किस मार्ग को अपनाया जाए, यह समस्या मानव जीवन में सदा के लिए बनी रही है। इस नाटक का नायक नन्द संशयग्रस्त मनःस्थिति में आंतरिक संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है। वह प्रवृत्ति और निवृत्ति अर्थात् पार्थिव-अपार्थिव जैसे परस्पर विरोधी मूल्यों के चयन में उलझा गया है। जीवन-यापन करते समय हर आदमी स्वयं निर्धारित मार्ग पर चलना चाहता है। दूसरे के सहारे निर्दिष्ट मार्ग पर एक संवेदनशील व्यक्ति चलना नहीं चाहता। किसी दूसरे द्वारा निर्दिष्ट मार्ग कितना भी श्रध्दास्पद, जैसे बुध्द का मार्ग, क्यों न हो या कितने ही ऐश्वर्यों से भरा, जैसे सुन्दरी का मार्ग, क्यों न हो, एक संवेदनशील व्यक्ति की समस्या का समाधान नहीं कर सकता। कोई भी व्यक्ति दूसरे के विश्वासों का लबादा ओढ कर नहीं जीना चाहता, तो खुद की खोज से जीना चाहता है। `लहरों के राजहंस` नाटक के अन्त में नन्द का अनिश्चित दिशा में गमन करना, इसी तथ्य का सूचक है।

इस नाटक की रचना बहुत लम्बी अवधि में हुई है। अतः इस नाटक की रचना में लेखक ने बहुत-से परिवर्तन बार-बार किए हैं। जिसका कारण लेखक की अपनी उलझन है। नाटक के बनने न बनने की उलझन में वे उलझ गए थे। जिन उलझनों के बीच से वे गुजर रहे थे, उन्हीं को उन्होंने इस नाटक में प्रस्तुत किया है। `दूसरों के हर प्रश्न का उत्तर मेरे पास है। नहीं है तो अपने ही कुछ प्रश्नों का उत्तर।`[१] मन की यह उलझन नाटक को निरंतर तराशे जाने की प्रक्रिया के बीच में ले जाती है। `आज की दुनिया में हम अपने भीतर अधिकाधिक विभाजित होते जा रहे हैं, क्योंकि प्रत्येक आदमी कहीं-न-कहीं बुध्द होता जा रहा है .... दूसरी ओर वह शक्ति है जो हमें अपनी जिन्दगी में सर्वाधिक भौतिक सुखों को प्राप्त करने के लिए बाध्य करती है। यह ऐसी द्विविधा की स्थिति है जिसमें इनमें

---

१ . लहरों के राजहंस - भूमिका - मोहन राकेश - पृ.२६

से हर एक बँटा हुआ है। .. अत: मैं अपने इस दूसरे नाटक में आज के मनुष्य की इस द्विविधात्मक स्थिति को चित्रित करना चाहताथा।[१]

राकेश ने अपने साहित्य द्वारा इच्छा और नियति, पार्थिवता और अपार्थिवता प्रवृत्ति और निवृत्ति, स्त्री की मानसिक और लैंगिक स्वतन्त्रता आदि अनेक प्रश्न उठाए हैं। इस नाटक में अस्तित्वादी चर्चा अधिक मुखर रुप में भावनाओं का साथ लेकर हुई है।

इस नाटक का प्रारम्भ कपिलवस्तु नगर के राजकुमार नन्द के भवन में सुन्दरी के कक्ष से होता है। प्रारम्भ में ही नेपथ्य से धर्म्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।
बुध्दं सरणं गच्छामि। का समवेत स्वर सुनाई देता है, जिसके माध्यम से नाटककार ने नाटक की कथावस्तु पर ऐतिहासिक प्रभाव छोडने का प्रयास किया है। लेकिन जैसे-जैसे कथा आगे बढती है, वैसे-वैसे वह आधुनिकता की ओर अग्रसर होती हुई दिखाई देती है। सुन्दरी ने कामोत्सव का आयोजन कराया है। अत: श्वेतांग, श्यामांग और नीहारिका सुन्दरी के कक्ष को सुसज्जित कर रहे हैं। कर्मचारियों के बीच चले वार्तालाप से यह स्पष्ट होता है, कि श्यामांग सोचता अधिक है, इसलिए वह कोई भी काम ठीक तरह से नहीं कर पाता। वह कहता भी है, 'पता नहीं क्या हो रहा है। बार-बार आँखों के सामने जाने कैसा अन्धेरा-सा घिर आता है। समझ में नहीं आता कि ...[२] इसी बीच श्वेतांक के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है, कि सुन्दरी ने कई वर्षों के बाद कामोत्सव का आयोजन किया है। कई वर्षों के बाद कामोत्सव का आयोजन आज ही क्यों किया जाए' यह सवाल श्वेतांग के सामने खडा है। कामोत्सव के आयोजन के सम्बन्ध में सब लोग सोचते रहते है, परंतु कोई कुछ बोल नहीं सकता। कामोत्सव के आयोजन का कारण नाटक के तीसरे अंक में स्पष्ट हो जाता है। वास्तविकता तो यह है, कि कुमार सिध्दार्थ की पत्नी यशोधरा से सुन्दरी

---

१ मोहन राकेश - साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि - पृ.१६४-६५

२ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश - पृ.४४

स्पर्धा भावना से पेश आती है। कुमार सिध्दार्थ घर से भाग जाकर गौतम बुध्द बन कर वापस आता है। यशोधरा भी बौध्द भिक्षुणी बननेवाली है और नन्द भी कहीं बौध्द भिक्षु बन जाएगा, इस बात का डर सुन्दरी को दिन-रात कचोटता रहता है। अत: जिस दिन यशोधरा बौध्द भिक्षुणी बननेवाली है, उसी दिन ईर्ष्यावश सुन्दरीने कामोत्सव का आयोजन किया है। और कामोत्सव की तैयारी की देखरेख करने के लिए सुन्दरी अलका के साथ मंच पर आती है। सुन्दरी को अपने सौन्दर्य और यौवन पर गर्व है। उसे पूरा विश्वास है, कि उसका पति उसके सौन्दर्य और प्रेम-पाश से मुक्त होकर कभी भी बौध्द भिक्षु नहीं बनेगा। कामोत्सव बडी धूम-धाम से मनाना है, इसलिए सुन्दरीने कपिलवस्तु के सभी लोगों को आमंत्रित किया है और अतिथियों के सत्कार के लिए विशेष प्रकार की मदिरा का प्रबन्ध भी किया है। कल प्रात: देवी यशोधरा भिक्षुणी बननेवाली है और यहाँ रातभर नृत्य होगा, आपानक चलेगा, इस विचित्र बात के कारण श्यामांग अंदर ही अंदर टूटता और घुटता है। और इसीलिए उसका मन किसी काम में नहीं लगता। अत: सुन्दरी उसे बाहर जाने का आदेश देती है। वह उसकी घृणा करती है। श्यामांग बाहर जाकर कमल-ताल में पत्थर फेंकने लगता है, इसलिए सुंदरी श्यामांग को दक्षिण के अंधकूप में रखने का आदेश देती है। परंतु जब सुन्दरी को यह मालूम होता है, कि अलका श्यामांग से प्रेम करती है, तो वह श्यामांग को दिया हुआ दण्ड माफ कर देती है। पूरे नाटक में श्यामांग का जो अन्तर्द्वंद्व है, वह नन्द का भी अन्तर्द्वंद्व है। अत: पूरे नाटक में श्यामांग नन्द का प्रतीक है।

हर प्रकार से कामोत्सव की तैयारी करते समय सुन्दरी श्यामांग और अलका के सम्बन्ध में भी सोचती है। सिध्दार्थ को लेकर वह अन्तर्द्वंद्व से पीडित हो जाती है। वह अलका से कहती है, 'उन्होंने बोध प्राप्त किया है, भावनाओं को जीता है। परंतु मैं जानना चाहती हूँ, कि कामनाओं को जीता जाए, यह भी क्या मन की एक कामना नहीं / और ऐसी कामना किसी के मन में क्यों जागती

है ?[१] ` अलका और श्यामांग के प्रेम-सम्बन्ध में भी वह सोचती है, कि ` सच, एक ही व्यक्ति को लेकर कैसी विरोधी भावनाएँ जागती है अलग-अलग लोगों के मन में। अलका उससे प्रेम करती है। स्वयं कुमार के मन में भी उसके लिए विशेष स्नेह और अनुराग है। जब भी अकेले होते हैं, उसे पास बुलाकर देर-देर तक बात करते रहते हैं। परन्तु मुझे क्यों उससे चिढ होती है ? क्यों लगता है, कि वह एक व्यक्ति नहीं, दो आँखों का एक अनचाहा भाव है, जो हर समय इस घर की हवा में घुला-मिला रहता है ?[२] `

इस कामोत्सव में बहुत अतिथि सम्मिलित होंगे-सुन्दरी को ऐसा दृढ विश्वास है। अत: उन्होंने अतिथियों के रुकने का प्रबन्ध बाटिका में ही किया है। इसी बीच आखेट के लिए जंगल में गया हुआ नन्द किसी मानसिक तनाव से थकान और टूटन महसूस करता हुआ प्रवेश करता है। ` सच, थकान उतनी शरीर की नहीं, जितनी मन की है। मृग मेरे बाण से आहत नहीं हुआ, इसका मन को उतन खेद नहीं, जितना इसका कि जब मैं ने थक कर लौटने का निश्चय किया, तो वही मृग रास्ते में थोडी दूर आगे मरा हुआ दिखाई दे गया।.... किसी के बाण से आहत नहीं हुआ। अपनी ही थकान से मर गया। बाण से घात-विघात मृग को देखकर मन में कभी कोई अनुभूति नहीं होती। होती भी है, तो केवल प्राप्ति की हल्की-सी अनुभूति। परन्तु बिना घाव अपनी ही क्लान्ति से मरे मृग को देखकर जाने कैसा लगा। उसी से अपने आप इतना थका और टूटा हुआ लगने लगा कि..।[३] इस प्रकार नाटक के अन्त में यह तथ्य सच साबित होता हुआ दिखाई देने लगता है, कि व्यक्ति, खुद की मानसिक थकान से टूट कर थका - माँदा दिखाई देने लगता है। ` अपनी ही क्लान्ति से मरे हुए ` मृत और जीवित ` मृग का प्रसंग जैसे सांकेतिक रुप में भीतर ही भीतर निरन्तर मरते हुए थकते टूटते परन्तु बाहर से जीवित

---

१ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश पृ.५०

२ -वही- पृ.५९

३ समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र- सृष्टि - डॉ.जयदेव तनेजा -पृ.११६

नन्द का ही चित्र प्रस्तुत करता है।[१]' और यथार्थ भी वहीं है। वह दो विरोधी प्रवृत्तियों के बीच उलझा गया है। वह गौतम बुध्द के यहाँसे जाने पर सुन्दरी के पास आना चाहता है और सुन्दरी के पास आने पर बुध्द के पास जाना चाहता है। वह किसी भी जगह स्थिर और शान्त नहीं हो पाता। इस प्रकार नन्द मृत और जीवित मृग का पर्याय बन जाता है।

नन्द रुपगर्विता सुन्दरी के मोह-पाश में पूरी तरह जकड गया है, फिर भी वह उससे कुछ ऊपर उठना चाहता है। कामोत्सव के समय सुन्दरी के मन में चुभें ऐसी कोई भी बात या प्रसंग वह उसके सामने नहीं लाना चाहता है। नन्द की की हुई किसी भी बात पर बिना ध्यान दिए सुन्दरी कामोत्सव की तैयारी में लीन रहती है। अतिथियों के लिए इतने बडे स्थान का प्रबन्ध देख कर जब नन्द इतने लोगों के आने के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट करता है और सुन्दरी की आशा पर पानी फेर देता है, तब सुन्दरी वैभव के दर्प से गर्वपूर्वक कहती है,' यह कैसे सम्भव है ? आज तक कभी हुआ है, कि कपिलवस्तु के किसी राजपुरुष ने इस भवन से निमन्त्रण पाकर अपने को कृतार्थ न समझा हो[२] ?' जब नन्द का सोमदत्त और विशालदेव से मिल कर आना , सुन्दरी को मालूम होता है, तब उसके भ्रम का निराकरण हो जाता है। यशोधरा कल बौध्द भिक्षुणी बन कर भवन से बाहर भिक्षुणियों के शिबिर में रहने के लिए चली जाएगी, इसलिए नन्द यशोधरा के आग्रह पर उससे मिलने गया था, यह सुन कर सुन्दरी के अन्तस् में बहुत बडा संघर्ष चलता रहता है। क्योंकि वह यशोधरा से ईर्ष्या करती है।' आत्मवंचना की भी एक सीमा होती है। आज के दिन वे आशीर्वाद देंगी, और मुझे ? मन में क्या सोचती होगी, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ[३]।'

बातों ही बातों में नन्द यह जान जाता है, कि श्यामांग को सुन्दरी ने

---

१ समसामयिक हिन्दी नाटकों में चरित्र - सृष्टि-डॉ.जयदेव तनेजा - पृ.११६

२ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश पृ.६३

३ -वही- पृ.६५

किसी कारण दण्ड दिया है। कारण पूछने पर सुन्दरी तीखे स्वर में कहती है कि मैं ने उसे दण्ड दिया भी है और अब मैं ने उसे क्षमा भी कर दी है। और उसके उन्माद की व्यवस्था भी कर दी है, तो बात ही समाप्त हो जाती है। सुन्दरी यह जानती है, कि श्यामांग ही इस भवन का अकेला ऐसा कर्मचारी है, जिससे आपको विशेष अनुराग है। जिससे बात कर के आपको विशेष सुख मिलता है। जिसकी बातों में आपको अपने अन्तर्गत की छाया झलकती दिखाई देती है।[१]

कामोत्सव के लिए केवल एक मात्र अतिथि आता है और वह है, मैत्रेय। मैत्रेय कहता है, कि रविदत्त, अग्निवर्मा, नीलवर्मा, ईशान, शिवाल सभी ने आने की असमर्थता प्रकट करते हुए क्षमा-याचना की है। और सब का कहना है, कि कामोत्सव का आयोजन आज के बदले कल रखा जा सकता है। यह सुनकर सुन्दरी असंतुष्ट भाव से झुँझलाकर कहती है, कि 'कामोत्सव कामना का उत्सव है, आर्य मैत्रेय। मैं अपनी आज की कामना कल के लिए टाल रखूँ - क्यों ? मेरी कामना मेरी अन्तर की है। मेरे अन्तर में ही उसकी पूर्ति भी हो सकती है। बाहर का आयोजन उसके लिए उतना महत्त्व नहीं रखता जितना कुछ लोग समझ रहे हैं। ... यह षड्यन्त्र नहीं तो क्या है ? ... आर्य मैत्रेय - जिन-जिनके यहाँ होकर आए हैं, उन सबके यहाँ एक बार और होते आए। उन सबसे कह दे, कि मेरे यहाँ आने के लिए वे किसी कल की प्रतीक्षा में न रहें। वह कल अब उनके लिए कभी नहीं आएगा', क्योंकि समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। इस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है और पहला अंक समाप्त होता है।[२]

पहले अंक के स्थान और कथा से ही दूसरे अंक का आरम्भ होता है। पहला अंक रात उतरने के समय शुरु होता है, तो दूसरा अंक उसी रात के अन्तिम पहर में शुरु होता है। प्रारम्भ में ही श्यामांग का ज्वर-प्रलाप सुनाई देता है, कि,

---

१ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश पृ. ६६

२ -वही- पृ. ७०-७१

कहाँ हूँ मैं ? क्यों हूँ यहाँ ? .... मेरा स्वर, पानी की तरह लहरों का स्वर , सब कुछ एक आवर्त में घूम रहा है । ... एक चील .. एक चील सब-कुछ झापटकर लिए जा रही है । इसे रोको । इसे रोको...[१] श्यामांग के प्रलाप से नन्द रात भर बेचैन रहता है । अलका की बातें भी बीच-बीच में सुनाई देती है । चिल्लाते-चिल्लाते श्यामांग मूर्च्छित हो जाता है । यह जानकर नन्द द्वार के पास आकर दीप जलाने के लिए अलका से अग्निकाष्ठ मँगवा लेता है । अलका कक्ष की अव्यवस्था को न देखे, इसलिए वह अग्निकाष्ठ लेकर खुद दीपक जलाने लगता है । अलका रातभर सोई नहीं और नन्द भी रातभर सोया नहीं, परन्तु नन्द अलका से बहाना करता है कि, ' मुझे नींद नहीं आई । ... तुम जाओ, श्यामांग को तुम्हारी आवश्यकता होगी ।'[२] दूसरी तरफ सुन्दरी अभी भी शान्त भाव से सोई हुई है । उसे किसी भी बात का पता नहीं है । सोई हुई सुन्दरी की ओर देखकर नन्द के मन में तरंगें उठने लगती हैं, ' बीत जाता है सब कुछ । आशंका तभी तक रहती है, जब तक कि वह अभी अनागत में होता है । ... कितना विक्षोभ था सोने से पहले इसके मन में । कुछ भी तो नहीं देखा इसने कि क्या, कहाँ गिरा, क्या कैसे टूट गया .... ओह, कैसा-कैसा लगा था उस समय । मन होता था कि ... परन्तु उसका विक्षोभ अस्वाभाविक सी तो नहीं था । पहले दिनभर के उत्साह की थकान, फिर अतिथियों के न आने की निराशा । फिर भी इतना तो इसे सोचना चाहिए था, कि मैं ने इसे निराशा से बचाए रखने का ही तो प्रयास किया था । ... कह नहीं सकता कौन-सा उन्माद अधिक भयानक है -- वह जो चेतना की ग्रन्थियों को तोड देता है, या वह जो उनमें एक ज्वर ले आता है ? .... सच कभी कभी कितना अवसाद घिर आता है मन में । .... परन्तु फिर तुम्हारी आँखों में देखते ही अवसाद की धुन्द न जाने कहाँ छँट जाती है ।..... उस समय तुम क्रोध में थी, तो कितनी उग्र, कितनी कठोर, कितनी प्रखर लग रही थी । इस समय सो रही हो, तो कितनी करुण, कितनी निर्भर, कितनी अबोध लग रही हो । बिल्कुल उस मृग की तरह, जिसे कल वन में छोड आया था ।' जो बिना घाव अपनी ही क्लान्ति से घायल

---

१ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश - पृ.७३

२ -वही- पृ.७५

३ -वही- पृ.७५-७६

होकर जीवित-मृत अवस्था में पडा था । इतने में सुन्दरी की आँखें खुलती है और नन्द को अभी तक उसी कक्ष में देख तथा दीपक को जलते देख वह यह जान जाती है, कि नन्द रातभर सोया नहीं है । सुन्दरी जब यह पूछती है, कि तुम्हारे मन में मेरे प्रति बहुत क्रोध था ? तब क्रोध मेरे मन में और तुम्हारे प्रति , ऐसा तुम सोच सकती हो ? यह कह कर कमरे की अव्यवस्था को कोई न देखे इसीलिए स्वयं कमरे को सहेजना चाहता है ।

सुन्दरी उठकर प्रसाधन करना चाहती है, उसके लिए वह दर्पण लेकर नन्द को उसके सामने खडा रहने के लिए कहती है । नन्द उसके कहने पर खडा रहता भी है, परन्तु वह यह नहीं समझता कि, वह किस पर अधिक मुग्ध है, सुन्दरी की सुन्दरता पर या चातुरी पर । मानो सुन्दरी के रुप में उसका एक यक्षिणी से विवाह हुआ है, जो उसे अपने जादू से चलाती है । सुन्दरी अपना प्रसाधन करने लगती है । इसी बीच बौध्द भिक्षु-भिक्षुणियों का समवेत स्वर सुनाई देता है --

धर्म्मं सरणं गच्छामि ।
संघ सरणं गच्छामि ।
बुध्दं सरणं गच्छामि ।

यह स्वर सुनते ही नन्द और सुन्दरी दोनों भी विचलित हो जाते हैं । सुन्दरी का हाथ रुक जाता है, तो नन्द दर्पण को ठीक तरह संभाल नहीं पाता और यह स्वर शांत होते ही उसके हाथ से दर्पण गिर कर टूट जाता है । दर्पण के टूटने का एक महत्त्व पूर्ण प्रतीक के रुप में लेखक ने इस नाटक में प्रयोग किया है, जो तीसरे अंक में सुन्दरी का अहं टूट जाएगा, इसका संकेत देता है ।

टूटे दर्पण में सुन्दरी खुद को देखती है और कहती है, ' अच्छा लग रहा है । यह दो भागों में बँटा चेहरा - खण्डित मस्तक, खण्डित सीमान्त ...।[१] ' सुन्दरी का यह कथन ही सिध्द कर देता है कि सुन्दरी अन्तस् में टूटी, अव्यवस्थित, और भयभीत होकर अन्तर्द्वन्द्व के वृत्त में घुम रही है । लेकिन बाहर से व्यवस्थित, निर्भय और निर्द्वन्द्व की स्थिति में जी रही है । इसी बीच अलका आकर यह

---

१ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश - पृ.८९

समाचार देती है, कि गौतम बुध्द व्दार पर भिक्षा के लिए आए थे, लेकिन निराश होकर लौट गए। यह सुनकर नन्द विचलित हो जाता है। लेकिन सुन्दरी पर इसका कोई भी असर नहीं होता है। अपनी गलती और प्रमाद के लिए नन्द बुध्द के यहाँ जाकर बुध्द की क्षमा माँगना चाहता है, इसलिए वह सुन्दरी की अनुमति लेता है। सुन्दरी के अनुरोध पर बुध्द के यहाँ जाते हुए नन्द सुन्दरी को यह आश्वासन भी देता है, कि ' मुझे सदा वहीं करना है जो तुम चाहोगी, और वैसे ही करना है जैसे तुम चाहोगी। नहीं ?'[१] इससे यह सिध्द होता है कि नन्द सुन्दरी के हाथ की कटपुतली बना हुआ है।

तीसरा अंक उसी कक्ष में लेकिन अगली रात के समय प्रारम्भ होता है। अपनी गलती के लिए क्षमा-याचना करने के लिए नन्द बुध्द के यहाँ गया था, लेकिन अभी तक तो नहीं आया है। उद्यान की ओर से आती हुई सुन्दरी अलका से कहती है, कि मेरा तो इस बात पर विश्वास ही नहीं होता कि राजहंस कमल-ताल से स्वयं उडकर चले गए और ताल से उन्हें कोई चुरा ले गया यह भी मन नहीं मानता है। यहाँ राजहंस नन्द के प्रतीक के रुप में आए है। क्योंकि राजहंस की तरह नन्द का हृदय भी आहत हुआ है, अत: नन्द सुन्दरी द्वारा बनाए गए मोह-पाश रुपी ताल को छोड कर चले गए हैं। सुन्दरी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहती है कि, ' परन्तु राजहंस आहत थे .... कम-से-कम एक उनमें अवश्य आहत था। क्या उनके पंखों में इतनी शक्ति रही होगी, कि वे अपनी इच्छा से उडकर कहीं चले जाते ? फिर जिस ताल में इतने दिनों से थे, उसका अभ्यास, उसका आकर्षण, क्या इतनी आसानी से छूट सकता है ?' अभी तक नन्द घर लौट कर नहीं आया है यह देख कर सुन्दरी के मन में सन्देह होने लगा है। वह सोच रही है कि जिस प्रकार यशोधरा का आकर्षण नन्द को नहीं बाँध सका और वह घर छोड कर चला गया उसी प्रकार मेरे साथ तो कहीं ऐसा नहीं हुआ है न ? इस बात को भुमाकर वह कहती है कि, ' मैं ने उन्हें भेजा था, तो एक विश्वास के साथ भेजा था। चाहती तो रोक भी सकती थी। परन्तु रोकना मैं ने नहीं चाहा, क्यों कि वैसा करना

---

१ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश पृ.९६

दुर्बलता होती । अब इतना सन्तोष तो है, कि दुर्बलता कहीं थी, तो मुझ में नहीं थी ।[१] अलका सुन्दरी की मन:स्थिति को जान कर यह विश्वास दिलाती है, कि नन्द वापस आ जाएँगे, तुम थोडा विश्राम कर लो । और इस प्रकार की बेचैनी में सुन्दरी सो जाती है । इसी बीच श्वेतांक आकर सुन्दरी से कहता है, कि तथागतने भिक्षु आनन्द से नन्द को दीक्षित करवा दिया है । यद्यपि उन्होंने इसका विरोध किया, परंतु बडे भाई के सम्मान के लिए वे मौन हो गए । यह सुन कर अलका बेचैन हो जाती है और सुन्दरी को जगाकर इस बात की सूचना देना चाहती है । परन्तु इसी बीच नन्द और भिक्षु आनन्द आते है । भिक्षु आनंद और नन्द में बहुत कहा सुनी होती है । अन्त में नंद कहता है, कि तुम मेरा घर देखना चाहते थे, देख लिया न । इस पर भिक्षु चोट करता है ' मैं घर देखना चाहता था, नन्द .. घर .. कहा या उधान नहीं । तुम्हारे पास कहा और उधान सब-कुछ है, घर नहीं है ... घर जिसमें तुम्हारी आत्मा को विश्राम मिल सके ।[२] ' यह कहकर भिक्षु चला जाता है और नन्द अकेले ही आत्मसंघर्ष में रत रहता हैं । श्वेतांक और अलका की बातों से यह स्पष्ट होता है, कि नन्द बुध्द के यहाँ से दीक्षा ग्रहण करने पर भी बिना भिक्षा पात्र ग्रहण किए जंगल की ओर चले गए और किसी बाध से भीड कर इस तरह क्षत-विक्षत होकर भिक्षु के साथ वापस आ गए । इसलिए नींद खुलने पर जब सुन्दरी उन्हें देखती है, तो वह उन्हें कोई दूसरा ही व्यक्ति कहती है । यह सुनकर नन्द तिलमिला उठता है और कहता है कि ' दूसरा ? ... तो तुम भी कह रही हो, कि मैं कोई दूसरा व्यक्ति हूँ ? केवल इसलिए, कि किसी ने हठ से मेरे केश काट दिए है ? मुझे पहले से थोडा अपरूप कर दिया है ? क्या इतने से ही व्यक्ति एक से दूसरा हो जाता है ?[३] ' सुन्दरी के व्यवहार से नन्द को गहरी ठेस पहुँचती है । नन्द की उपस्थिति में भी वह स्वयं को अकेली महसूस करती है ।

---

१ लहरो के राजहंस - मोहन राकेश पृ. १४०

२ - वही - पृ. १०९

३ - वही - पृ. २२६

नन्द अपने मन की बात स्पष्ट करता है कि, ` मैं जानता हूँ तुम्हें यह सब सुनना सह नहीं है। इसलिए सह नहीं है, कि तुम समझती हो, तुम्ही वह केन्द्र हो, जिसके वृत्त में मैं एक नक्षत्र की तरह घूमता हूँ। परन्तु मैं अपने को एक ऐसे टूटे हुए नक्षत्र की तरह पाता हूँ जिसका कहीं वृत्त नहीं है, जिसका कोई धुरा नहीं है। ... मैं चौराहे पर खडा नंगा व्यक्ति हूँ, जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती है, और अपने को ढकने के लिए जिसके पास आवरण नहीं है जिस किसी दिशा की ओर पैर बढाता हूँ, लगता है वह दिशा स्वयं अपने ध्रुव पर डगमगा रही है, और मैं पीछे हट जाता हूँ।[1]` इस प्रकार नन्द को घर और बाहर कहीं भी चैन नहीं मिलता है। नंद जब बुध्द के यहाँ चला जाता है, तब सुन्दरी के पास आना चाहता है और जब सुन्दरी के पास रहता है, तो बुध्द के यहाँ जाने के लिए व्याकुल हो जाता है। सुन्दरी भी दर्पण की भाँति टूट गई है। जब तक सुन्दरी नन्द के साथ होती है, तब तक स्वयं की टूटन बाहर नहीं दिखाती है, लेकिन नन्द के बाहर जाते ही वह अपनी ग्लानि से सिसकती हुई हथेलियोंपर औंधी हो जाती है। यहाँ आकर अपनी क्लान्ति से मरनेवाला मृग सुन्दरी का प्रतीक बन जाता है। सुन्दरी यशोधरा, बुध्द, नन्द या अन्य किसी से पराजित नहीं होती, परंतु यहाँ आकर नाटक के अन्त में वह खुद से पराजित हो जाती है। इस प्रकार अन्तर्द्वंद्व के बीच ` त्रासदी ` के रूप में नाटक समाप्त होता है।

नाटक का आधार इतिहास है, लेकिन ` नाटक का मूल अन्तर्द्वंद्व उस अर्थ में यहाँ भी आधुनिक है जिस अर्थ में आषाढ का एक दिन के अन्तर्गत है।[2]`

निष्कर्ष --

लेखकने यहाँ आधुनिक मानव के अन्तर्द्वंद्व को ऐतिहासिक परिवेश में प्रस्तुत किया है। आज के दुविधाजनक मानव के आत्म-संघर्ष को पाश्चात्य शैली

---

१ लहरों के राजहंस - मोहन राकेश - पृ. १२१

२ - वही - पृ. ९०

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

पर प्रस्तुत किया है। आधुनिक जीवन मूल्यों की सफल चेष्टा नाटक में की गई है। आज का मानव संशयग्रस्त है, इसलिए वह प्रवृत्ति-निवृत्ति के बीच कोई सही रास्ता नहीं खोज पाता है। मोग-मोदा के झमेले में उलझा मानव कोई एक मार्ग निश्चित नहीं कर सकता है। इस अन्तर्द्वंद्व को साकार करने का सफल प्रयास लेखक ने इस नाटक में किया है। इस नाटक की कथावस्तु की गठन में प्रमुख रुप से परम्परा का मोह परिलक्षित होता है।

आधे-अधूरे

पूर्णता की खोज अधूरेपन में --

'आधे-अधूरे' १९६९ में प्रकाशित मोहन राकेश का तीसरा तथा उनके नाटकों में बहुचर्चित नाटक है। यह आडम्बरहीन तथा एक अलग प्रकार का नाट्य प्रयोग है। इस नाटक का विभाजन अंकों में नहीं, बल्कि अन्तराल में किया है। क्योंकि नाटक की एकरसता और स्वाभाविक प्रभाव को अंत तक बनाए रखने के लिए राकेश ने नाटक का विभाजन अंकों की अपेक्षा अंतराल में करना ही उचित समझा, जिससे अनुभूति की सघनता और भी अधिक प्रभावी बन गई है। निश्चय ही 'आधे-अधूरे' हिंदी नाट्य साहित्य की प्रचलित धारा से बहुत ही अलग किस्म का नाटक है, इसलिए उसके सम्बन्ध में बहुत तेजी से ढेरों क्रिया-प्रतिक्रियाएँ हुई। कुछ प्रतिक्रियाओं में उसकी पूरी-पूरी प्रशंसा की गई और उसे इब्सन, स्ट्रिंडबर्ग, ओनील, आर्थर मिलर आदि विदेशी नाटककारों के नाटकों के समकक्ष कहा गया। तो कुछ प्रतिक्रियाएँ बिल्कुल विरोधी हुई, जिसमें इस नाटक को भावुकता और व्यावसायिकता से भरा नाटक कहकर उसे खोखला नाटक भी कहा गया। दो विरोधी छोरों को छूती हुई ये प्रतिक्रियाएँ निश्चय ही एकांगी सिध्द होती है, क्योंकि 'आधे-अधूरे' हिंदी नाट्य साहित्य की परंपरा से बिल्कुल भिन्न प्रकार का और महत्वपूर्ण नाटक है, जो आज की समकालीन संवेदना को छूता है। राकेश ने इस नाटक में स्वयं को ऐतिहासिक परिवेश से मुक्त किया है और उन्होंने सामाजिक परिवेश तथा आज के कटु यथार्थ को नाटक का केन्द्र बनाया है।

निश्चय ही `आधे-अधूरे`, आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में बिखराव और संत्रास की कहानी है।[१]` मोहन राकेश ने इस नाटक व्दारा वर्तमान युग के संत्रस्त जीवन की बडी ही करुण और यथार्थ तस्वीर अंकित की है। आधुनिक मानव जीवन की कुण्ठा, पीडा और संघर्ष की अगतिक छटपटाहट इस नाटक में प्रस्तुत की है। पारिवारिक जीवन की खण्डित सीमाओं का विदारक दर्शन यहाँ होता है। एक मध्यवित्तीय परिवार की ज्वलन्त समस्या नाटककार ने हमारे समक्ष प्रस्तुत की है।` आधे अधूरे` को आधुनिक जिन्दगी का पहला सार्थक नाटक माना जाता है, क्योंकि इसमें वर्तमान जीवन की विभीषिका और कटु यथार्थ को अनेक रेखाओं व्दारा अंकित किया गया है। इसमें उलझनों की तीव्रता अधिक घनीभूत हुई है, जो विस्फोट की कगार को छूती दिखाई देती है।

अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित इस नाटक में दर्शित स्त्री-पुरुष की सम्बन्धहीनता को राकेश ने अपने वैवाहिक जीवन में झेला था। आत्मीयता की चाह उन्हें बार बार घर की तरफ खींचती थी, लेकिन उनका `अहं` उन्हें झुकने नहीं देता था। `घर` की तलाश राकेश के साहित्य की स्थायी भावना मानी जा सकती है। राकेश शुरु से अंत तक जीवन में, साहित्य में, सगेसम्बन्धियों में, पत्नियों में, मित्रों में अपने `घर` के लिए छटपटाते रहे, एक ऐसा घर, जो उनके सिर्फ उनके ही अनुकूल हो।

मोहन राकेश के `आधे-अधूरे` नाटक में एक तरह से तलाश ही है - अपने घर की। वास्तव में यह एक घरेलू नाटक है। उसमें वर्तमान जीवन का यथार्थ चित्रित कर एक मध्यवर्गीय परिवार की संघर्षपूर्ण कहानी नाटकीय ढंग से प्रस्तुत की है। इस नाटक में नर नारी के आपसी तनाव से परिवार के बच्चे भी टूटते है, घुटन का अनुभव करते हैं। पति-पत्नी का गृह-कलह और कुण्ठाएँ पारिवारिक जीवन को क्लेशपूर्ण एवं असहनीय बना देती है।[२]`

नाटक का आरम्भ एक अनामधारी काले सूटवाले आदमी के स्वगत भाषण

---

१ मोहन राकेश और उनके नाटक - गिरीश रस्तोगी - पृ.९७

२ मोहन राकेश के नाटक - डॉ.व्दिजराम यादव - पृ.१२५

से होता है और नाटक की शुरुआत ही व्यक्तिगत समस्या से होती है। वह आदमी अपने सम्बन्ध में जानने का प्रयास करता है। वह खुद ही पूछता है कि, ' मैं वास्तव में कौन हूँ।'[१]

'पुरुष एक' (महेन्द्रनाथ) प्रथम दर्शन में ही अपने और नाटक के सम्बन्ध में अनिश्चित-सी बात करता हुआ आत्मसंघर्ष में डूबकर बाहर चला जाता है और दिन भर दफ्तर में काम करने से थकी हुई उसकी पत्नी सावित्री घर आती है, आते ही सब चीजें अस्त-व्यस्त देखकर झल्लाती है और जब महेन्द्रनाथ आता है, तब घर की दुर्व्यवस्था को लेकर दोनों में अनबन शुरु होती है - ' यह अच्छा है, कि दफ्तर से आओ, तो कोई घर पर दिखे ही नहीं। कहाँ चले गए थे तुम ?'[२] इस तरह घर आते ही, घर में किसी के न होने से सावित्री अजनबीपन महसूस करने लगती है और आगे कहती है ... पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का ? रोज आने पर पचास चीजें यहाँ वहाँ बिखरी मिलती हैं।'[३]

' महेन्द्रनाथ सावित्री से प्रेम करता है और सावित्री भी उसकी पत्नी होने से कभी उससे प्रेम करती रही होगी, परंतु जब महेन्द्रनाथ को उसने निकट से जाना, तब उससे वितृष्णा होने लगी'[४] क्योंकि जीवन में उसे असीम उपेक्षाओं से संघर्ष करना पड़ा है। महेन्द्रनाथ की बेरोजगारी के कारण घर का पूरा बोझ सावित्री को ही उठाना पड़ता है और जीवन की आन्तरिक इच्छाएँ पूरी न कर पाने की कचोट भी उसके मनमें है। इसलिए वह जिस प्रकार की जिन्दगी जीना चाहती है, उसे प्राप्त न होने से पति और बच्चों के साथ तिक्त बर्ताव करती है।

ऑफिस से घर आने पर वह चाहती है, कि उसके अफसर सिंघानिया के आने के समय उसका पति भी घर में मौजूद रहे, परन्तु उसके पति महेन्द्रनाथ को सिंघानिया का उसके घर आना पसन्द नहीं है। वह कहता है - ' तुमने कहा होगा उससे आने के लिए।'[५] उसपर स्त्री कहती है - ' कहना फर्ज नहीं बनता मेरा ?

---

१ आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ.९
२ - वही - पृ.१३
३ - वही - पृ.१३
४ मोहन राकेश के नाटक - द्विजराम यादव पृ.१२६
५ आधे अधूरे - मोहन राकेश पृ.१४

आखिर मेरा बॉस है। तुम ज्यादा जानते हो ? काम तो मैं ही करती हूँ उसके मातहत।[१] अच्छा यही होगा, कि वह हमारे घर आए तब उस समय तुम घर पर ही रहो, क्योंकि पहले जब जब आया है वह, तुम घर पर नहीं थे।

पति निठल्ला होने के कारण सिंघानिया के सामने आने से बचता है, और कुछ बहाना करके जुनेजा के यहाँ चला जाता है। उसे लगता है कि, जुनेजा उसकी मदद करनेवाला है, पर सावित्री सोचती है, कि उसके घर को बरबाद करनेवाला व्यक्ति जुनेजा है। इसी वैचारिक तनाव से इस नाटक में प्रस्तुत आर्थिक समस्या पर प्रकाश पडता है। आर्थिक संकट को लेकर दोनों में कहा - सुनी आगे बढती है। पुरुष एक कहता है - 'उन दिनों पैसा लिया कितना था फैक्टरी से। जो कुछ लगाया था, वह सारा तो शुरु में ही निकाल निकाल कर खा लिया और ...।'[२] उसपर स्त्री कहती है कि तुमने अपने मित्रों को शराब पिलाकर, दावत देकर सारी सम्पत्ति विनष्ट कर दी है।

महेन्द्रनाथ के समान ही उसका लडका भी निठला है और वह भी तीन-तीन दिन घर से बाहर रहता है। बडी लडकी भी किसी के साथ भाग गई है। सावित्री कहती है, कि लडका बाप के कारण बिगडा हुआ है, तो महेन्द्रनाथ कहता है, कि लडकी माँ के कारण घर से भागने में सफल हुई। सावित्री सिंघानिया के घर आने का उद्देश्य बताती है, कि मैं चाहती थी, कि लडके की नौकरी के सम्बन्ध में उससे बात करूँ, पर महेन्द्रनाथ सिंघानिया के घर आने का उद्देश्य अच्छी तरह से जानता है, इसलिए वह उसकी बात पर व्यंग्य करता है। वह मनोज के आने-जाने का जिक्र करता है तथा पुरुष तीन जगमोहन, की बात भी छेडता है, जिससे सावित्री के होश-हवास गुम हो जाते हैं। इस मनोवैज्ञानिक परिवर्तन से यह सिध्द होता है, कि स्त्री का जगमोहन के साथ नाजुक सम्बन्ध था। यहाँ लेखक ने स्त्री के पुरुष के साथ होनेवाले यौन सम्बन्धों की मनोवैज्ञानिक समस्या को उठाया है।

---

१ आधे अधूरे - मोहन राकेश पृ. १४-१५

२ - वही - पृ. १८

इसी बीच बड़ी लड़की बीना बाहर से स्कूटर रिक्शा का किराया चुकाने के लिए पचास छुटे पैसे माँगती हुई आती है। माँ-बाप दोनों भी लड़की का इस तरह आने का कारण जानना चाहते हैं, पर लड़की से बिना कोई बात पूछे दोनों आपस में तर्क - वितर्क करते रहते हैं। महेन्द्रनाथ कहता है --' मेरी उस आदमी के बारे में कभी अच्छी राय नहीं थी। तुम्हीं ने हवा बाँध रखी थी, कि मनोज यह है, वह है ... जाने क्या है। तुम्हारी शह से उसका घर में आना जाना न होता, तो क्या यह नौबत आती, कि लड़की उसके साथ जाकर बाद में इस तरह ....[१]?' सावित्री तो यहाँ तक कहती है कि,' जो दो रोटी आज मिल जाती है मेरी नौकरी से, वह भी न मिल पाती[२]।' ' माँ-बाप यह अनुभव करते हैं, कि कहीं कुछ कमी है, जिसकी वजह से लड़की यहाँ आती है[३]।' बातों-बातों में बड़ी लड़की रोती हुई कहती है -' पूछने में रखा भी क्या है, ममा। जिन्दगी किसी तरह कटती ही चलती है हर आदमी की[४]।' ' मेरा मतलब है ... कि शादी के पहले मुझे लगता था, कि, मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूँ। पर अब आकर ... अब आकर लगने लगा है कि वह जानना बिल्कुल जानना नहीं था[५]।' इससे स्पष्ट होता है कि जीवन का यह यथार्थ सत्य है, कि प्रेम अंधा होता है और यह भी स्पष्ट होता है कि माँ बाप के चारित्र्य की छाया बच्चोंपर पड़ती है, जिससे आधुनिक समाज के बच्चे बर्बादी की ओर आगे बढ़ते रहे हैं। इस तरह ये तीनों पात्र कुण्ठाग्रस्त, घुटन, असंतोष एवं द्वंद्व की स्थिति में संघर्ष करते रहते हैं।

नाटककार ने आगे मध्यवर्गीय परिवार के आर्थिक तनाव को स्पष्ट किया है। परिवार की छोटी लड़की को किताबें और सिलाई क्लास के लिए रिल नहीं मिलता है और उसके सम्बन्ध में जब वह माँ से शिकायत करती है, तब माँ आक्रोश

१	आधे-अधूरे - मोहन राकेश	पृ.२३
२	आधे-अधूरे - मोहन राकेश	पृ.२३
३	मोहन राकेश के नाटक - द्विजराम यादव	पृ.१२७
४	आधे-अधूरे - मोहन राकेश	पृ.२६
५	- वही -	पृ.२७

करती है, " तू और तेरी मिस, रोग लगा रखा है जान को ।"[१] इस पर छोटी लड़की असंतोष प्रकट करती है, कि क्या वह भी अशोक की तरह पढ़ना छोड़ दे तथा वह अपने स्कूल ड्रेस के अभाव की बात भी सुनाती है । यहाँ मध्यवित्तीय परिवार की आर्थिक दीवार हिलती हुई नजर आती है ।

उसके बाद सिंघानिया आता है, आते ही आत्मप्रशंसा के उद्देश्य से प्रसंग से हटकर बातें करता रहता है । लड़के की नौकरी के सम्बन्ध में सावित्री की की हुई बात को अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की बात करके उड़ा देता है । सिंघानिया में बनावटीपन अधिक है और वह नारी लोलुप भी है । सावित्री उसके यहाँ कई बार हो आई है । लड़का इस असलियत को अच्छी तरह जानता है और उसकी बात पर व्यंग्य करता है । तब सावित्री आवेश में आकर कहती है — " कोई जरूरत नहीं किसी से भी बात करने की । आज वक्त आ गया है, जब खुद ही मुझे अपने लिए कोई न कोई फैसला -...।"[२] लड़का इस बात पर सावित्री को टोकता है और उसे अपने लिए कुछ प्रबन्ध करने की सलाह भी देता है तथा बातों-बातों में लड़की की प्रेम कहानी को भी कह देता है ।

छोटी लड़की पड़ोस की लड़की सुरेखा के साथ कुछ अश्लील बातें करती है । इसलिए अशोक उसे बुरी तरह डाँटता है । भाई से बचने के लिए छोटी लड़की अशोक की प्रेमलीला की ओर संकेत करती हुई बताती है, कि अशोक भी उद्योग सेन्टर वाली लड़की वर्णा से प्रेम करता है ।

जुनेजा अंकल घर आनेवाले है, पर सावित्री उनसे बात नहीं करना चाहती । इसलिए जुनेजा के आने से पहले ही वह जगमोहन के साथ बाहर जाना चाहती है । महेन्द्रनाथ को जगमोहन का घर आना पसन्द नहीं है, फिर भी सावित्री जगमोहन को घर बुलाती ही है और उसके साथ बाहर जाने की तैयारी भी करती है । जगमोहन के आने पर उससे कुछ प्रेमालाप करने के बाद सावित्री उसके साथ बाहर चली जाती है ।

इसी तरह इस घर के सभी सदस्य अपनी-अपनी प्रेमलीला में मस्त हैं तथा वे

---

१ आधे-अधूरे - मोहन राकेश पृ.३४

२ - वही - पृ.६१

एक-दूसरे की प्रेमलीला से पूरी तरह परिचित भी है। बडी लडकी मनोज के साथ भाग जाती है, पर प्रेम का नशा उतरने पर वह अनुभव करने लगती है, कि वह अपने अंदर अपने घर से ही कुछ ऐसी चीज लेकर गई है, जो उसे स्वाभाविक रहने नहीं देती। सावित्री को पारिवारिक जीवन और यौन इच्छाओं की पूर्ति में सफलता नहीं मिलती है। वह अनुभव करती है, कि घर के लोग उसे मशीन समझते हैं। उद्योग सेन्टरवाली लडकी वर्णा के प्रेम रंग में अशोक बुरी तरह डूबा हुआ है। वह घर की चीजें उसे ले जाकर देता है। बारह साल की छोटी लडकी स्त्री-पुरुष के गुप्त सम्बन्धों में रुचि लेती है। हर तरहसे घर के सभी सदस्य मस्ती में दिन काट रहे हैं।

महेन्द्रनाथ जुनेजा के यहाँ चला जाता है और वहाँ से घर आना नहीं चाहता, फिर भी वह सावित्री को इतना चाहता है, कि अन्दर से उससे विलग होने की बात तक नहीं सोच पाता। इसलिए वह जुनेजा को सावित्री से समझौता करने के लिए घर भेजता है।

जुनेजा और सावित्री में महेन्द्रनाथ को लेकर बहुत कहा सुनी होती है। जुनेजा दोनों में समझौता करना चाहता है, पर वह हो नहीं पाता। तब जुनेजा सावित्री से महेन्द्रनाथ को मुक्त करने के लिए कहता है।[1] इसी बीच बीमारी की स्थिति में महेन्द्र आता है। नाटक का कथानक बिना किसी समाधान के यहीं समाप्त हो जाता है। पति-पत्नी दोनों तलाक देना चाहते है, परंतु तलाक दे नहीं पाते।[1]

नाटक की समस्याएँ पश्चिमी समाज से जुडी हुई है। इसका प्रभाव पूरब के देशोंपर भी पडता जा रहा है।[2] इस मध्यवित्तीय परिवार के सभी पात्र आधे-अधूरे होने से उनमें निरंतर कलह होता रहता है। पुरुष के निठल्ला होने से परिवार में सदैव उपेक्षित रहता है। पत्नी धनार्जन करती है। अत: उसमें अहंकार है तथा वह पूरे परिवार पर अपना रोब जमाना चाहती है। पूरे परिवार का खर्च चलाने से स्त्री स्वच्छंद रहना चाहती है और अपनी अतृप्त काम-वासना की तृप्ति

---

१ मोहन राकेश के नाटक - डॉ. द्विजराम यादव पृ. १३३

२ - वही - पृ. १३३

के लिए अनेक पुरुषों से सम्पर्क रखती है । यह काम वासना की भूख ही हमारे सामने एक प्रश्नचिन्ह खडा कर देती है, कि क्या कमानेवाली भारतीय नारी इसी तरह सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन कर, काम-वासना की तृप्ति के लिए अनेक पुरुषों से सम्पर्क रखती हुई स्वस्थ परम्परा को बनाए रख सकेगी ? मैं और बहन के मुक्त प्रेम के परिवेश में अशोक भी नि:संकोच भावसे प्रेम करता है। परिवार के सभी सदस्य विषम स्थिति के कारण एक दूसरे से कटे हुए रहते हैं और अपने को बेगाना महसूस करते हैं। ' परिवार की विषम स्थिति के कारण आज के होनहार बच्चे बिगडते चले जा रहे हैं।[१] '

छोटी लडकी बारह तेरह साल की है, पर पडोसवाली लडकी से काम-सम्बन्धों की चर्चा करती है । स्कूल से आने पर घर में कोई न मिलने के कारण वह घुटन महसूस करती है । स्कूल में भूख लगने पर उसके पास कोई पैसा भी नहीं होता । मैं, बेटी, बेटा सभी पाश्चात्य संस्कृति की नकल करते हैं । सावित्री अपनी कमाई पर गर्व करती है और पति को फटकार सुनाती है । वह हर एक के साथ अशिष्टतापूर्ण बर्ताव करती है । नित्य नए पुरुषों से सम्पर्क स्थापित करने के बाद भी उसकी काम वासना की तृप्ति नहीं होती । जरुरत से ज्यादा पैसा व्यय करने की प्रवृत्ति आज के परिवारों में बढती जा रही है, जिससे समाज की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल होती जा रही है । इस परिवार के हर व्यक्ति को अपने घर की तलाश है । हर कोई चाहता है, कि उनका अपना घर हो । अपना से मतलब दूसरों का उस घर में कोई भी स्थान न हो । लेकिन हर कोई यह भूल जाता है , कि घर में दूसरे भी कोई व्यक्ति है, उनकी भी कोई इच्छा-आकांक्षाएँ होती हैं । परिवार का हर व्यक्ति अपनी ही इच्छा-आकांक्षाओं के सम्बन्ध में सोचता रहता है । सावित्री तो यहाँ तक सोचती है, कि सिर्फ वह अकेली ही पूर्ण है और बाकी सब, जिनके सम्पर्क में वह आई है, अधूरे है । पहले वह यह भूल जाती है कि वह स्वयं अधूरी है, जिसकी पूर्ति के लिए वह इधर उधर भटकती रहती है और वैचारिक भिन्नता बढकर परिवार में एक तनावपूर्ण वातावरण बना रहता है । ' इस प्रकार का परिवार सर्वदा अपने सामने प्रश्न

---

१ मोहन राकेश के नाटक - डॉ. द्विजराम यादव - पृ. १५६

चिन्ह लेकर खडा रहेगा। इससे बचने का उपाय तो इस नाटक में नहीं मिलता, लेकिन सावधान रहने के लिए ही नाटककारने यहप्रश्न चिन्ह हमारे सामने रखा है[१]।

निष्कर्ष --

कहा जा सकता है, कि मोहन राकेश के आधे-अधूरे नाटक में आधुनिक जीवन की विडम्बना, स्त्री-पुरुष के बीच होनेवाला तनाव, पारिवारिक विघटन, मध्यवर्गीय जीवन की विनाशकारी रुष्टता, मानसिक तनाव, अजनबीपन, काल्पनिक और खोखली पूर्णता कीखोज, असंतोष, सहानुभूतिका अभाव, यौन सम्बन्ध तथा पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण आदि वर्तमान जीवन की विभिन्न समस्याओं को उठाया है, जिससे परिवार टूटकर बिखर जाता है और इस बिखराव के लिए जगमोहन जैसे लम्पट और सिंघानिया जैसे भ्रष्ट अधिकारी जिम्मेदार हैं। तथा इसका दूसरा महत्वपूर्ण कारण पति-पत्नी में होनेवाली वैचारिक भिन्नता भी है, जिससे जीवन जीना दुरुह हो जाता है। इस नाटक में सावित्री के पास वह समझौते की वृत्ति नहीं है, जो आम तौर पर भारतीय नारी में होती है।

आज भारतीय जीवन में आधुनिक युग तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से महान परिवर्तन होता जा रहा है। खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि सभी के परिवर्तन के साथ ही स्वच्छंद काम भाव की तृप्ति के लिए भारतीय नर-नारी बेचैन-से दिखाई देते हैं, परन्तु उस हद तक नहीं जिस हद तक आधे-अधूरे की सावित्री आदि बेचैन दिखाई देते हैं। इस नाटक मेंचित्रित स्थिति हमारे देश के महानगरीय जीवन में कहीं कहीं दिखाई देने लगी है, मगर बच्चों पर होनेवाले पारिवारिक स्थिति के प्रभाव का चित्रण बहुत ही प्रामाणिक और प्रभावशाली बन गया है। इस प्रकार मोहन राकेश ने आधे-अधूरे में आधुनिक भारतीय सभ्यता के चरमरा जाने की सम्भावना का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

---

१ मोहन राकेश के नाटक - डॉ. द्विजराम यादव - पृ. १५७

पैर तले की जमीन

व्यक्तित्वों का टकराव --

मोहन राकेश के अन्तिम नाटक ' पैर तले की जमीन' का प्रकाशन राकेश की मृत्यु के बाद सन १९७५ में हुआ ।' यह नियति की विडम्बना है, कि समूचे नाटक की संयोजना को पका लेने के बाद राकेशजी' पैर तले की जमीन ' को अधूरा छोड गए - शोधा, मांजा, अन्तिम मसविदा केवल पहले अंक का ही कर पाए। दूसरे अंक की परिकल्पना, उसके दृश्यबन्ध के खाके, इस अंक के आधे संवाद उनकी नोट-बुक्स में ही मिले।[१]' इससे स्पष्ट होता है, कि राकेशजी ने ' पैर तले की जमीन' का केवल पहला ही अंक लिखा था । प्रसिध्द कहानीकार कमलेश्वर राकेशजी के हमदर्द और निकटतम दोस्त थे, जिन्होंने 'पैर तले की जमीन' नाटक के दूसरे अंक को पूर्णता प्रदान की । कमलेश्वर ने नाटक की पूर्णता के लिए रागात्मक तद्रूपता की पूर्णता को स्वीकारा और सफलता से निभाया भी । ' किसी कृति की अधूरी छूटी रचना को पूरा करने के लिए बडे साहस और रागात्मक तद्रूपता की आवश्यकता होती है । कमलेश्वरजी ने राकेशजी से अपने कितने गहरे लगाव के नाते इस चुनौती को स्वीकार किया होगा, इसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है[२]।' इस नाटक में दो व्यक्तियों की रचना का अलगाव उभरता नहीं कमलेश्वर नाटक से वैचारिक एवं रचनात्मक समग्रता बनाए हुए है । उन्होंने अपना अलग अस्तित्व दर्शाया ही नहीं, वे इस नाटक में राकेश ही बन कर रहे हैं।

' पैर तले की जमीन' नाटक में मनुष्य मात्र की जिजीविषा एवं अपना अस्तित्व बनाए रखने की अपूर्व छटपटाहट स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । इस ' नाटक को अस्तित्ववादी जीवन दर्शन पर आधारित हिन्दी का अभी तक का पहला या एक मात्र नाटक कहा जा सकता है[३]।' राकेशजी ने इस नाटक में शब्द और नेपथ्य

---

१ पैर तले की जमीन - मोहन राकेश - दो शब्द - अनीता - तृतीय - संस्करण - - पृ.५

२ अपने नाटकों के दायें में - मोहन राकेश - तिलकराज शर्मा - पृ.६

३ - - वही - पृ.१३५

की ध्वनियों के मिले जुले प्रभाव को एक नए प्रयोग के रुप में प्रस्तुत किया है, जिसमें आधुनिक युग में मनुष्य के सामाजिक जीवन से वैयक्तिक जीवन तक व्याप्त मूल्य विघटन, विसंगति, मानवीय सम्बन्धों के खोखलेपन, निरर्थकता आदि को मूर्त रुप दिया है। वर्तमान युग में अर्थ की अतिरिक्त महत्ता ने मनुष्य को 'कुछ बनने' की अन्धी दौड ने बूरी तरह व्यस्त कर दिया है। भौतिक उपलब्धि व्दारा 'कुछ बनने' की प्रक्रिया ने ही उसके दायित्व को विघटित कर दिया है और उसे मानसिक रुप से तोड भी दिया है। वास्तव में पैर तले की जमीन ही व्यक्ति को स्थिरता प्रदान करनेवाली है, लेकिन वहीं आज पैर तले से खिसकती नजर आ रही है। आज समाज के प्रत्येक वर्ग को इसी मानसिक विघटन ने ही प्रभावित कर दिया है और उनकी भिन्न भिन्न विशिष्टताओं को नष्ट भी कर दिया है। आज निम्न वर्ग से अभिजात्य वर्ग तक सब लोग टूटे, विक्षिप्त और धुराहीन बन रहे हैं। हम अपनी इस स्थिति को प्रत्यक्ष रुप में स्वीकार नहीं करते हैं। तथा अपने को आडम्बर के एक लबादे में छिपाए रखने की कोशिश कर दूसरों को बेनकाब करने की निम्न वृत्ति हममें पनप रही है। यही हमारे आज के जीवन की विडम्बना है। 'सब एक दूसरे के खोल से वाकिफ हैं, एक-दूसरे का खोल उतारते देखना चाहते हैं -- मगर अपना खोल बनाए रखते हुए।'[१] राकेश ने 'पैर तले की जमीन' में बाढ में घिरे कुछ लोगों की प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति दी है, जिसके माध्यम से इस नाटक में एब्सर्ड नाटकों की भाँति आधुनिक जीवन की असंगति, ऊब और निरर्थकता को बडे मार्मिक ढंग से स्पष्ट किया है।

वैसे तो नाटक में कोई खास कथावस्तु नहीं है। नाटक का केंद्रिय घटना-स्थल 'टूरिस्ट क्लब ऑफ इंडिया' ही है। क्लब में आने जाने के लिए तैयार किया हुआ पुल टूट जाने से कुछ लोग क्लब में कैद हो जाते हैं, और नाटक की कथा-वस्तु उन लोगों की प्रतिक्रियापर आधारित है। अपने व्यक्तिगत जीवन में पराजित और टूटे हुए लोग ही अपने अजनबीपन और बिखराव को भूलने के लिए नियमित रुप से क्लब में आते है और मर्मांतक दर्द को भूलने के लिए ताश के पत्तों, मद्यपान

---

१ पैर तले की जमीन - मोहन राकेश पृ. ६०

और पाश्चात्य संगीत के शोर का सहारा लेते हैं। क्लब के बार मैन अब्दुला, चौकीदार न्यामत और अभिजात्य वर्ग के प्रतिनिधि -झुनझुनवाला, पण्डित, अयूब, सलामा आदि सभी ' पैदायशी बुजदिल ' पात्र है। पुल टूटने के बाद का कुछ घंटों का समय क्लब में कैद हुए लोगों के वास्तविक रुप को उजागर करता है।

नाटक के प्रारम्भ में लेखकने नाटक के मन्तव्य को बारमैन अब्दुल्ला के माध्यम से बडे ही मार्मिक ढंग से उजागर किया है, ...' जी हाँ, भेज दिया है अयूब साहब को। ... नहीं, अब कोई नहीं रहा यहाँ। पुल में दरार पडने की खबर पाते ही सब लोग क्लब खाली कर गए हैं।...हम भी बस चला ही चाहते हैं। स्टोर का सामान मैंने चेक कर लिया है, सिर्फ हिसाब की कापी चेक करनी रहती है।'[1] इससे स्पष्ट होता है, कि पुल के टूट जाने से सभी लोग क्लब छोड कर चले जाते हैं, परंतु अब्दुल्ला पुल के पूरी तरह टूट जाने से पहले सारे हिसाब चुकता कर जाना चाहता है। उसी प्रकार नाटक के अन्त में झुनझुनवाला भी मरने से पहले लाखों के चैक काटकर अपने असली व्यक्तित्व का परिचय दे जाना चाहता है।

थोडी ही देर में पुल की दरार डेढ फुट हो जाती है। लिद्दर तथा शेषनाग दरियाओं का फासला भी क्रमश: घटता जा रहा है, जो क्लब के अन्दर कैद हुए लोगों को और भी अधिक सन्त्रास दे जाना चाहता है। इस प्रकार व्यापक स्तर पर घुटन और टूटन के अहसास को पिए सब लोग जिए जा रहे हैं।' विक्री साढे सात पेग। और बाकी .. होनी चाहिए छह पेग और है नहीं यह चार पेग भी।... जैसे खुद बोतलें ही पी जाती हैं अपने अन्दर से। या कोई चुपके से इनके लेबल बदल देता है। सीलन का हिसाब ब्लैक एण्ड व्हाइट से मेल खाता है और ब्लैक एण्ड व्हाइट का व्हाइट का हिसाब .. वह तो मेल खाता ही नहीं..मेरा क्या है... मैं यहाँ हिंदसे बदल देता हूँ। हिंदसे बदलना कोई बेईमानी नहीं। बेईमानी हो जो मैंने खुद पी हो और हिसाब न रखा हो।'[2] इस प्रकार व्यापक

---

१ पैर तले कीजमीन - मोहन राकेश - पृ.९

२ - वही - पृ.१०

स्तर का संघर्ष व्यक्ति के स्तर पर आ जाता है। व्यक्ति अपने स्तर पर अपनी वास्तविकता को सच्चे अर्थों में खोल कर रखता है। वह सोचता है, कि सब लोग जान बचाने के लिए भाग रहे हैं और वह ही क्यों हिसाब की कापी में उलझा कर अपनी जिन्दगी को तोलता रहे।

इधर पुल टूट रहा है, मृत्यु कदम-दर-कदम नजदीक आ रही है, लेकिन उसी का अहसास सिवाय अब्दुल्ला और नियामत के अन्य किसी को भी नहीं है। सभी ने अपना अहसास भुलाने के लिए अपने मन को किसी-न-किसी बात में उलझाकर रखा है। उधर झुनझुनवाला और पण्डित ताश खेल रहे हैं और शराब की माँग कर रहे हैं। टेबल टेनिस रुम में नीरा और रीता (गुड्डी दीदी) टेनिस खेल रही है। सब खुद को भुलाने के लिए वहाँ आते हैं। सब बाकी दुनियासे बेखबर हैं, अपने वास्तविक अस्तित्व और मानसिकता में जी रहे है। नियामत और नीरा की बातचीत से यह स्पष्ट होता है कि स्विमिंग पुल का ताला बन्द होने पर भी नीरा और रीता टूटी दीवार फाँद कर उसमें रोज दोपहर नहा लेती हैं। ये सभी लोग पुल के उसपार के प्रतिष्ठित समाज के व्यक्ति है, लेकिन पुल के इस पार उनकी पैर तले की वास्तविक भूमि है, जिस पर वे अपनी मानसिकता के धरातल पर नाच सकते हैं। उस धरातल पर अब्दुल्ला और नियामत भी खडे हैं। अब्दुल्ला को अपने नवजात शिशु की चिन्ता है और भविष्य में आनेवाली बेरोजगारी की चिंता है, तो नियामत को अपनी माँ की चिन्ता है। परंतु उनके बाह्य स्तर के नीचे ये चिन्ताएँ दब कर रह गई है। पुल की दरार धीरे धीरे बढ रही है, मृत्यु द्रुत गति से निकट आ रही है, फिर भी उसे भुलाने की चेष्टा कर अब्दुल्ला अपने हिसाब-किताब में उलझ गया है। नियामत अयूब को टूटते पुल की दरार में लुढकने से बचाकर उस पार पहुँचा आया था। परन्तु उस हिचकोले खानेवाले पुल पर एक स्त्री के साथ अयूब को देखकर रीता की मानसिकता भी हिचकोले खाने लगती है, क्योंकि वह कल तन-मन के स्तर पर अयूब के अन्दर के व्यक्ति पशु को भोग चुकी है। पुल के हिचकोले देने की रीता की बात को सुनकर पण्डित अब्दुल्ला से कहता है, ' तब तो जरुर डर की बात है। ... क्योंकि तुझे अपने लडके को देखने जाना है। यहाँ तो न कोई देखने को है, न दिखाने को। उस पार

पहुँच गए, तो वहाँ पडे रहेंगे । न पहुँचे, तो यहाँ भी कुछ बुरा नहीं है ।[१] झुनझुनवाला और पण्डित को मृत्यु की कोई भी चिन्ता नहीं है । उन्हें सिर्फ पी कर जीने की चिन्ता है । तो दूसरी तरफ अब्दुल्ला के मन में फिर से बेरोजगारी आ जाने का अहसास है । टूटे पुल की तरह उसकी मानसिकता जिन्दगी के गणित में उलझी हुई है । कौन-सा हिसाब कितना है, कौन-सा बिल किसे देना है, इसका भी उसे पता नहीं है । इतने में सलमा के साथ अयूब, डॉक्टर की खोज में वहाँ आ जाता है, जिसने कल रीता का हाथ पकडा था, इसलिए रीता ने उसे खूब पीटा था । जिस जगह से सब लोग बाहर भागने के लिए चिन्तित है, अयूब एक बार वहाँ से निकल कर फिर वहाँ आ चुका है । वह सलमा के साथ डॉक्टर से मिलने आया है, लेकिन क्यों, कुछ तबीयत खराब है ?' नहीं, कुछ रिश्ते खराब है । मेरे और मेरी बीवी के ... हमें कुछ गहरी बातें डॉक्टर से करनी थी । डॉक्टर मेरी बीवी का बचपन का दोस्त है ... अब समझे कुछ तुम[२] ?' नाटक में इसके बाद वास्तव में किसका किस के साथ क्या सम्बन्ध है, इसी वृत्त के आस-पास बात घूमती दिखाई देती है । धीरे धीरे क्रमश: पुल टूटने के साथ-साथ, अस्तित्व का संकट नजदीक आ रहा है यह देख कर सभी अपने मूल में और भी नंगे होते जा रहे हैं । सलमा अयूब की पत्नी है, परंतु उसके लिए सलमा एक कब्रस्तान बन गई है अथवा अपने रास्ते में या औरों के रास्ते में बिखरा काँच का टुकडा बन गई है ।

वहाँ कोई भी अपने आपको कम और छोटा नहीं समझना चाहता, यहाँ तक कि तेरह चौदह साल की नीरा भी । अब्दुल्ला सभी को इकट्ठा कर टूटते पुल के उस पार ले जाना चाहता है, परंतु लिद्दर और शेषनाग दरिया के समान सभी अपने भीतर और बाहर बिखरे हुए है ।

सलमा बेहोश पडी है, पर अयूब उसे देखने तक नहीं जाना चाहता । दूसरों को जाने के लिए कहता है । इसी बीच एक्स.ई.एन.ने फोन से सन्देश दिया

---

१ पैर तले की जमीन - मोहन राकेश - पृ.२५

२ - वही - पृ.४१

है कि कोई पुल पर न आए।

इस प्रकार लेखकने पहले 'अनुवर्तन' में पुल के टूटने के माध्यम से सम्बन्धों की कड़ियों के गिरने की ओर संकेत किया है। पुल की मरम्मत किए जाने का समाचार फोन से मिलता है, याने जब तक पुल ठीक नहीं हो पाता, तब तक सब को फुरसत ही फुरसत मिलनेवाली है। लेकिन दूसरे ही क्षण यह समझाता है, कि दोनों दरियाओं का पानी एक-दूसरे में मिल गया है और सम्पूर्ण क्लब पानी से घिर गया है। सब लोग खतरे में हैं। यह जान कर सब लोग खतरे को सहने और जोखिम उठाने की मानसिकता में आ जाते हैं। सब अपनी सचाई को खोलने लगते हैं। और निर्णय के स्वतंत्र अधिकार का उपयोग करने में तत्पर दिखाई देते हैं। अब सबकी मौत निश्चित हो गई है और सभी सामूहिक स्तर पर आपने-आप से कट जाने के लिए विवश हो जाते हैं ' जब मुसीबत आती है तो सब अकेले ही होते हैं.... मुसीबत की शक्लें अलग अलग हो सकती है।[१] ' यहाँ सभी अपने आपको कुत्ते की तरह असहाय महसूस करते हैं। इस अन्तिम क्षण में सभी में अपने प्रकृत जीवन जीने का अहसास उभरने लगा है। रीता और नीरा को सामने देख अयूब का खिलखिलापन और भी अधिक उजागर होने लगता है। और वह अभी भी मरने से पहले एक लडकी (नीरा) की तलाश में है। झुनझुनवाला पोर्ट फोलियो, पण्डित ताश की गड्डी, नियामत घडी, अब्दुल्ला हिसाब की कापी, और रीता संगीत के रेकार्ड बचाना चाहती है। तो सलमा अयूब तक भी नहीं बचाना चाहती। नीरा के पास केवल संत्रास बाकी है। तभी चारों ओर से पुट टूट जाता है और बाढ का पानी बेतहाशा बढने लगता है। सभी मरने के लिए तैयार हो जाते हैं। इतने में पुल के उसपार से टार्च की रोशनी दिखाई देने लगती है। फोन से समाचार आता है कि उस पार से मदद आ रही है। और बाढ का पानी भी घटने लगता है। फिर से जीने की आशा सभी में जाग उठती है और वे सब फिर से अपने वर्गीकृत मुखौटे को धारण कर एक-दूसरे से टकरा जाते हैं।

यहाँ टूटता हुआ पुल नारी-पुरुष के टूटते सम्बन्धों का प्रतीक है।

---

१ पैर तले की जमीन - मोहन राकेश पृ.५७

पुल मनुष्य के दोहरे जीवन जीनेवाली मानसिकता का प्रतीक है। झुनझुनवाला समाज के पूँजीपति वर्ग का प्रतीक बन गया है। अपने वैवाहिक जीवन में असफल रहने की कुण्ठा को, संकट घडी का लाभ उठाकर, अयूब दो असहाय लडकियों - नीरा और रीता - से मिटाना चाहता है। सलमा - अयूब के जीवन में कब्रस्तान की अनुभूति इस तथ्य को उजागर करती है, कि व्यक्ति पारस्परिक सम्बन्धों के खोखलेपन से ऊब कर आत्मघातक प्रवृत्तियों की ओर झुक रहा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि समाज में सुसंस्कृत कहलानेवाला व्यक्ति भी पैर तले की जमीन खिसकने पर मृत्यु का दाण सामने देख कर एक दरिन्दा बन सकता है।[१]

निष्कर्ष --

कहा जा सकता है, कि राकेश ने इस नाटक के माध्यम से मनुष्यमात्र की जिजीविषा, अपना अस्तित्व बनाए रखने की अपूर्व छटपटाहट, अस्तित्ववादी जीवन दर्शन, शब्द और नेपथ्य की ध्वनियों का मिला-जुला प्रभाव, मूल्य - विघटन, विसंगति, अर्थ की महत्ता, मानवीय सम्बन्धों का खोखलापन, निरर्थकता, खुद को नकली मुखौटों के अंदर छिपाकर अपना खोल बनाए रखने की वृत्ति, नारी - पुरुष के टूटते सम्बन्ध, दोहरा जीवना, आत्मघातक प्रवृत्ति आदि बातों को उजागर किया है, और यह भी दिखाया गया है कि वर्तमान युग में हर व्यक्ति अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जूझ रहा है।

---

१ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में --
- डॉ. रीता कुमार - पृ. ३१७

मोहन राकेश का एकांकी साहित्य (परिचय)

अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज-नाटक --

' अण्डे के छिलके ' अन्य एकांकी तथा बीज नाटक नामक एकांकी संग्रह का प्रकाशन राकेश की मृत्यु के बाद १९७३ में हुआ । राकेश ने अपने एकांकियों व्दारा दुनियादारी की कठोरता पर गहरे प्रहार किए है । उनके एकांकियों में घर-बाहर टूट रही मान्यताएँ अपना निर्जीव कलेवर लेकर खडी है तथा उनमें जीवन में मनुष्य का नियति के साथ जूझना दिखाया है । राकेश ने स्वयं कहा है कि, ' साहित्य में हमेशा दो दिशाएँ रहती हैं -- समर्पण की दिशा और नकारने या विद्रोह की दिशा । मेरी दिशा दूसरी है, क्योंकि मेरे लिए वह अनिवार्य है । जिस दिन मुझमें जूझने की आकांक्षा नहीं रहेगी, उस दिन लिखने की आकांक्षा भी नहीं रहेगी[१]।'

जीवन के प्रति राकेश का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक था । उन्होंने अनुभूति के आधार पर ठोस जीवन मूल्यों का निर्देश एकांकियों में किया है, जीवन के विविध पहलुओं की चर्चा की है ।

राकेश ने एकांकियों व्दारा समाज की एवं परिवार की हिलती जडें, बहती मान्यताओं, टूटती परम्पराओं तथा परिवर्तित मूल्यों को हमारे सामने स्पष्ट किया है । ' आधुनिक परिवेश की दृष्टि से मोहन राकेश के एकांकी चुपचाप अपने को सवांरते हुए, तेज मनोवैज्ञानिक अन्तर-प्रभावों से सम्पृक्त होते हुए, वैज्ञानिक सभ्यता के बीच जिए जाते हुए जीवन की मानसिकता को नाना प्रकार की हलचलों के बीच धीरे अन्दाज से बाँध ने की क्षमता रखते हैं[२]।' इन एकांकी नाटकों में राकेश ने आधुनिक भारत की नब्ज को पकडा है तथा अपने हृदयगत भावनाओं को

---

१ मोहन राकेश - साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि - पृ.१७

२ मोहन राकेश के नाटक - डॉ.व्दिजराम यादव पृ.१६७

उजागर किया है। राकेश ने इन एकांकियों व्दारा आजादी के एक कालांश को रुपायित करने का प्रयास किया है। `अण्डे के छिलके` अन्य एकांकी तथा बीज नाटक नामक एकांकी संग्रह में `अण्डे के छिलके`, `सिपाही की मां।`, `प्यालियां टूटती हैं`, `बहुत बडा सवाल` आदि चार एकांकी नाटक, `शायद` और `हैं` दो बीज-नाटक तथा `छतरियां` नामक एक पार्श्व-नाटक संकलित हैं।

अण्डे के छिलके --

यह एक हास्य एकांकी है, जो पारिवारिक वातावरण लिए हुए है। इस परिवार में एक तरफ प्राचीन संस्कारों की प्रबलता है और दूसरी तरफ परिवर्तित वातावरण का प्रभाव भी है। एक ही कमरे में घटित होनेवाली इस एकांकी में कुल पात्र छ: है। इसमें बनावटी और कृत्रिम ढंग से जीवन जीने वाला मध्यवर्गीय परिवार है, जिसके विधि-निषेध, सांस्कृतिक पवित्रता-बोध से जुडी वर्जनाएँ, परम्परागत धार्मिक रुढियों का ढांचा भीतर ही भीतर खोखला और निष्क्रिय हो रहा है। नई-पुरानी पीढी का टकराव यहाँ चित्रित किया गया है। आज भी ऐसे परिवार समाज में विद्यमान है, जिस परिवार में धार्मिक दृष्टि से किसी का छुआ नहीं खाया जाता, मांस, मछली, अण्डा नहीं चलता, ऐसे परिवार के हम हैं, ऐसा कहा जाता है, वहाँ नई पीढी के लडके-लडकियाँ होटलों में और छुप कर घर में भी सब कुछ करते रहते हैं। वीना श्याम से कहती है, `जाओ, चार-छ: अण्डे ले आओ। मैं तुम्हें अण्डे का हलुआ बना देती हूँ`[१]। श्याम इन बातों को अपवित्र मानता है और कहता है, `शिव-शिव-शिव। किसी और चीज का नाम लो, भाभी। इस घर में अण्डे का नाम ले रही हो? जाओ जल्दी से जाकर कुल्ला कर लो। मुँह भ्रष्ट हो गया होगा`[२]। राधा को उपन्यास तकिये के नीचे छिपा कर और दरवाजे बन्द करके पढने की आदत है। इसलिए वीना राधा से कहती है, `क्षीनाझपटी में नहीं दूँगी, जीजी। ऐसे माँग लो, तो दे

---

१ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक - मोहन राकेश - पृ.१०

२ - वही - पृ.११

दूँगी । मगर इसमें इस तरह छिपा कर पढने की क्या बात है ? मैंने चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथ सब पढ रखी हैं । जब हम मिडिल में थी, तो स्कूल की लाइब्रेरी से लेकर पढी थी । इसमें ऐसा तो कुछ भी नहीं है, कि इसे तकिए के नीचे छिपा कर रखा जाए और दरवाजे बन्द करके पढा जाए ।[१]' इस प्रकार परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे से छिपा कर अण्डे खाते हैं । घर में रामायण, महाभारत के बदले उपन्यास तकिए के नीचे छिपा कर पढते हैं । घर के सभी सदस्यों ने खुद के खाने-पीने का कुछ अलग-अलग प्रबंध कर रखा है । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि बहुत ही सीधे-सादे ढंग से सामाजिक मूल्य और मान्यताएँ टूट रही हैं । एकांकी के सभी पात्र - श्याम, गोपाल, माधव, वीना, राधा आदि दोहरा जीवन जीते हैं । जीवन जीने का तरीका तो सब का बदल चुका है, अवश्य, लेकिन ऊपर दिखाने के लिए सबने पुरानी मान्यताओं का मुखौटा अपने चेहरे पर धारण किया है । बुजुर्ग पीढी के लोग परिवर्तित परिस्थिति से परिचित हैं, परंतु वे किसी को भी इसका पता नहीं लगने देते, कि वे सब कुछ जानते हैं । लेकिन माधव इस वास्तविकता का भण्डाफोड करता है,' क्यों नहीं जानती ? अम्मा तो शायद मेरी वे बातें भी जानती है, कि जो मैं समझता हूँ कि वे नहीं जानती हैं । आज से छिलके नाली में डाल दिया करो, इनके लिए डिब्बा रखने की जरुरत नहीं है । ... ... और जहाँ तक अम्मा का सवाल है, अम्मा उन्हें नाली में पडे हुए भी नहीं देखेगी[२] ।' पुरानी पीढी, नई पीढी के हरकतों को जानती है, फिर भी वह अनिच्छा से क्यों न हो उन्हें मानने के लिए विवश है । जमुना कहती है,' आज दो घण्टे से मेरे कमरे की छत चू रही है । मैं ने कितनी बार कहा था कि लिपाई करा दो, नहीं तो बरसात में तक्लीफ होगी । मगर मेरी बात तो तुम सब लोग सुनी-अनसुनी कर देते हो । कुछ भी कहूँ, बस हाँ माँ, कल करा देंगे माँ, कह कर टाल देते हो । अब देखो चल कर हर चीज भीग रही है । ... क्या बात है, सब लोग गुमसुम क्यों हो गए हो ? .... वीना, तू इस वक्त यह चम्मच लिए क्यों खडी है ? और गोपाल, तू वहाँ क्या कर रहा है कोने में[३] ? ' हर परिवार

---

१ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज- नाटक - मोहन राकेश - पृ. १४

२ - वही - पृ.२८

३ - वही - पृ.२१-२२-

में इसी प्रकार की मजबूरी दिखाई देती है। जमुना यह जानती है कि लडके अण्डा खाते है, राधा तिलस्मी उपन्यास पढती है, फिर भी अनजान बनी रहती है।

मनोरंजक घटनाओं के कारण यह एकांकी नाटक रंगमंच का वातावरण बोझिल नहीं होने देता है। इसमें सीधी-सादी बातों के माध्यम से वजनदार चीज कही गई है। यहाँ अण्डे का छिलका एक प्रतीक बन कर आया है। अब अण्डे का मूल तत्त्व पेट में हजम हो गया है अवश्य, बाकी बचे हैं केवल छिलके। परिवर्तित वातावरण के कारण पवित्रता-बोध की सीमा दात-विदात हो गई है, परंतु मात्र उसकी रक्षा के झूठे प्रयास बाकी बचे हैं। परंतु वास्तविकता यह है, कि एक-न-एक दिन पवित्रता नाम की सोखली चीज का रहस्य खुलनेवाला ही है। यह कहा जा सकता है, कि लेखक ने यहाँ समाज के टूटते हुए मूल्यों पर प्रखर प्रहार किया है।

सिपाही की माँ --

यह इस संग्रह का दूसरा एकांकी है, जो युध्द की विभीषिका पर आधारित है। यह एकांकी ब्रह्म देश में युध्द करने के लिए गए एक फौजी सिपाही की माँ बिशनी के हृदय की पीडा, आतुरता और व्याकुलता की कहानी है। राकेश ने सारी घटना का वर्णन बिशनी, बिशनी की लडकी मुन्नी और सिपाही मंगल की बहन के कथोपकथन व्दारा किया है। सिपाही बिशनी का प्यारा लडका है, जो ब्रह्मदेश में युध्द करने के लिए गया है। बिशनी हर रोज उसकी चिठ्ठी की राह देखती है। पहले जिसकी हर पन्द्रहवें रोज चिठ्ठी आ जाती थी उसकी दो-दो महीने में एक भी चिठ्ठी नहीं आती। इसलिए सिपाही की माँ बिशनी चिंचित है। मुन्नी ने गाँव के चौधरी से सुना है, कि लढाई में हर रोज कोई-न-कोई जहाज डूब जाता है। परंतु बिशनी को चौधरी की ये बातें अच्छी नहीं लगती, चौधरी एक लड़ाई में क्या हो आया है, दुनिया भर की सारी अक्ल उसके पेट में आ गई है। वह यहाँ बैठा ही सब कुछ जानता है। अपनी

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

तिरिया के चरित्रर का पता नहीं, जहाज डूबने का पता है।[१]' इससे स्पष्ट होता है कि अपने बेटे के लिए एक माँ का हृदय कितना तड़पता है, व्याकुल होता है, और कितना संघर्ष कर रहा है। जब दो बर्मी शरणार्थी लड़कियाँ आ जाती है, तब तत्कालीन युध्द की विभीषिका का हृदयस्पर्शी रुप उजागर होता है। दूसरे महायुध्द का सामान्य जनता पर जो भयंकर प्रभाव पड़ा था उसका थोड़ा-सा रुप वहाँ दृग्गोचर होता है।' हम रिफ्यूजी लोग हैं माँजी, बहुत दूर से भूखे - प्यासे आ रहे हैं। ... हम लोग रंगून से आ रहे हैं। हजारों लोग वहाँ से घरबार छोड़कर चले आए हैं। हम एक घर की दस औरतें यहाँ से तीन मील दूर एक पुरानी धरमशाला में पड़ी हैं। हमारे दो भाई रास्ते में मारे गए हैं। थोड़ा दाल-चावल दे दीजिए माँजी, आपकी जान की दुआ ...। ... आज हम लोग आप लोगों के ही आसरे हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत आप लोगों के घरों से मिल जाता है उसी से ...।... वहाँ दिन-रात आग बरसती है, माँजी। हम लोग फिर भी खुश-किस्मत हैं, जो जान लेकर निकल आए हैं। तेरह दिन तक हम लोग भूखे-प्यासे जंगली रास्ते में चलते रहे हैं। रास्ते में जंगल में बड़ी-बड़ी दलदलें पड़ती हैं। हममें से एक औरत एक दलदल में फँसकर वहीं रह गई[२]...।' इस प्रकार 'सिपाही की माँ' का कथानक युध्द की विभीषिका से सम्बन्धित है, लेकिन इसमें उस विभीषिका का कोई गहरा अर्थ नहीं दिया गया है[३]।' एकांकी में आगे जब दो घायल सिपाही एक-दूसरे के खून के प्यासे होकर परस्पर एक-दूसरे पर टूट पड़ते हैं, तब एकांकी में रोमांच उभर कर आता है। लेकिन यह दृश्य बिशनी सपने में देखती है। मुन्नी माँ से कहती भी है, कि तुम हर रोज भैया के ही सपने देखती रहती हो। अगले मँगल को भैया की चिट्ठी जरुर आ जाएगी। इस तरह की बातें करते-करते माँ-बेटी दोनों फिर से सो जाने का प्रयास करती है और एकांकी समाप्त होता है।

---

१ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज-नाटक - मोहन राकेश - पृ.३३

२ - वही - पृ.३६

३ मोहन राकेश औरउनके नाटक - गिरीश रस्तोगी - पृ.३१

प्यालियाँ टूटती हैं --

यह इस संग्रह की तीसरी एकांकी है। यह एकांकी मानवीय संवेदना और सहानुभूति के गहरे स्तर को रेखांकित करता है। परिवर्तित समय के साथ-साथ-मनुष्य की मनोवृत्ति भी स्वाभाविक रुप से परिवर्तित होती रहती है, जीवन-मूल्य बदलते रहते हैं, बनावट और खोखलापन जीवन के अंग बन जाते हैं, आपसी सम्बन्धों में भी बिखराव आता है आदि। आधुनिक जीवन के इस सत्य को 'प्यालियाँ टूटती हैं' एकांकी व्यक्त करता है। जीवन में सभी ओर कृत्रिमता आ रही है। 'इस कृत्रिम सभ्यता के पैमाने में जो आदमी फ़ीट नहीं पाता, उसे टूटी हुई प्यालियों के समान लान से बीन कर बाहर फेंक दिया जाता है[१]।' 'अण्डे के छिलके' में सामाजिक मूल्य टूट रहे हैं, तो 'प्यालियाँ टूटती है' में पारिवारिक सम्बन्ध टूट रहे हैं। 'प्यालियाँ टूटती है' शीर्षक एकांकी आधुनिक 'इलीट' कहे जानेवाले एक परिवार की 'स्नाबरी' को (चोंचलेपन को) मानवीय संवेदना-सहानुभूति के गहरे स्तर पर रेखांकित करता है। एक तरफ एक बूढे बरबाद, सरल और मानवीय ममता के मारे दीवानचन्द नामक पात्र की दयनीयता है, और दूसरी तरफ ससुर भोलानाथ और उसकी लडकी, और यहाँ तक की नौकर भी, जो घोर उपेक्षा का व्यवहार दिखाते हैं, वह मानवीय संवेदना का कलेजा काटता हुआ महसूस होता है[२]।

माधुरी और मीरा के वार्तालाप से एकांकी का आरम्भ होता है। एक-एक प्यालियाँ टूट जाती है। माधुरी के लिए प्यालियों का टूटना कोई अच्छी बात नहीं लगती तो मीरा को उसमें कोई विशेषता लगता ही नहीं। 'तो क्या हुआ ? प्यालियाँ तो टूटती रहती है[३]।' लेकिन माधुरी कहती है, 'जब एक के बाद एक इस तरह प्यालियाँ टूटती हैं, तो जरुर कोई-न-कोई अनिष्ट होता है[४]।' पुरानी चीज नष्ट होने से माधुरी चिंतित हो जाती है, तो मीरा का इस बात पर विश्वास

---

१ मोहन राकेश के नाटक - डॉ. विजराम यादव पृ.१७३
२ नाटककार मोहन राकेश - जीवन प्रकाश जोशी पृ.९२
३ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज-नाटक पृ.५१
४ - वही - पृ.५१

है, कि पुरानी चीज नष्ट हो जाने से नई चीज आ सकती है। माधुरी में आधुनिक बनने की चाह है अवश्य, पर उसमें आत्मविश्वास की कमी है। उसने मिसेस मेहता को चाय पर बुलाया है, जो नखरेवाली औरत है। माधुरी समाज में अपना स्थान बनाना चाहती है, कृत्रिम सभ्यता में अपने आप को फिट करना चाहती है, अत: हर रोज किसी-न-किसी को चाय पर बुलाती है। माधुरी की इस कमी को जान कर मीरा कहती है, `तुम्हें तो खामखाह का कॉम्प्लेक्स है, दीदी। अपनी अच्छी-से-अच्छी चीज पर भी तुम्हें भरोसा नहीं होता।` मिसेज मेहता के लिए माधुरी ने अपनी तरफ से पूरी तैयारी की है। चाय-पान जैसी साधारण चीज के लिए इतनी बडी तैयारी करना कृत्रिम सभ्यता की ही देन कही जाएगी। माधुरी और मीरा के जीजाजी दीवानचन्द इस तैयारी में बाधा बन कर आते हैं। फटे-पुराने कपडे पहन कर इस तरह दीवानचंद का आना माधुरी को पसन्द नहीं है, क्योंकि इससे उसकी प्रेस्टीज पर आघात पहुँचता है। इसलिए वह दीवानचंद की घृणा करती है। दीवानचंद को दूसरे दरवाजे से बाहर निकाला जाता है ? क्योंकि एक-दरवाजे से मिसेज मेहता आ जाती है। इस प्रकार प्यालियों के टूटने के क्रम के अनुसार इस परिवार का और एक सम्बन्ध टूट जाता है। इस प्रकार पारिवारिक सम्बन्धों के टूटने का सिलसिला प्यालियाँ टूटने के सिलसिले के समान ही चलता रहता है। समाज को लगी यह एक भयंकर बीमारी ही है। `आधे-अधूरे` की सावित्री के समान ही `प्यालियाँ टूटती है` की माधुरी भी स्वयं को चारों तरफ से आधा-अधूरा महसूस करती है।

बहुत बडा सवाल --

यह इस संग्रह का चौथा एकांकी है, यह पहले तीन एकांकियों की अपेक्षा बहुत बाद की रचना मालूम होती है, क्योंकि इसमें गहरी पैठ, कसी हुई बनावट, अनुभव का तीखापन और स्वाभाविकता नजर आती है। निम्न मध्यवर्ग के बाबू लोगों की स्थिति आज जड, शिथिल और ढुलमुल हो गई है। मात्र बातों में समय व्यय करने की उन्हें आदत है परिस्थिति के साथ बिना संघर्ष किए, बिना जूझे वे

सुख-सुविधाओं की एषणा करते हैं । इस एकांकी का कथानक ऐसे सुविधाभोगी निम्न मध्यवर्गीय बाबुओं से सम्बन्धित है । लेखकने यहाँ आधुनिक युग की नारेबाजी, समितियों के संचालकों के छल-कपट आदि का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । प्राय: लोगों को समय का महत्वही नहीं समझाता है । वे मीटिंग में घण्टों देर से आते हैं और आनेपर भी निरर्थक कार्य-व्यापर में समय बरबाद करते हैं । राकेश ने यहाँ ऐसे लोगों पर करारा प्रहार किया है । ' राष्ट्रीय स्तर पर, ऐसे और इस तरह के अन्य बहुत बडे-बडे सवाल मुँह बाँये खडे हैं, लेकिन समस्या यह है, कि ' बहुत बडा सवाल ' एकांकी की तरह फिलहाल ये सवाल मर है, जवाब यहाँ नहीं है - यहाँ है सिर्फ निरर्थक प्रस्ताव ... बहसें ... कोरम की खानापूरी और फिर अन्त में वहीं मुँह बाँये खडा सवाल - वह भी उलझा हुआ ।[१] ' इस एकांकी में ' लो ग्रेड वर्कर्स वेलफेयर सोसायटी ' कुछ मुद्दे उपस्थित करती है, जिस पर बहस कर निर्णय लेने के लिए सोसायटी के मेम्बरों की मीटिंग बुलवाई जाती हैं । लेकिन बहुत देर तक कोई भी आता नहीं । सब सोचते हैं, ये क्या मेरे बाप के घर का काम है, क्या हमें इनकी तनख्वाह मिलती है । केवल राम मरोसे और श्याम मरोसे दो चपरासी दरवाजे में ऊँघ रहे हैं । बहुत समय के बाद शर्मा, कपूर, मनोरमा, संतोष, गुरप्रीत, प्रेम प्रकाश, दीनदयाल, रमेश, मोहन, सत्यपाल आदि एक-एक के क्रम से आते हैं । आने पर बहुत देर तक मुँगफली-चाय चलती है । उसके बाद सामसाह की बातों में समय बीत जाता है । इस तरह मिटिंग केवल नाम मात्र की होती है । इतने में किसी के ध्यान में आता है कि मीटिंग प्रस्ताव गायब है । वह कोट के जेब में या गुरप्रीत के बटुवे में खो जाता है और अन्त में वह कूडे में मिलता है । परन्तु ' तो जेंटलमैन, मुझे अफसोस है कि कोरम पूरा न होने से मीटिंग अब जारी नहीं रह सकती । मैं मिटिंग बरखास्त करता हूँ ।[२] ' ऐसा कहकर मीटिंग बरखास्त की जाती है । मीटिंग में कोई भी प्रस्ताव पास नहीं होता है । और अन्त में मीटिंग के यथार्थ को स्पष्ट करता हुआ राम मरोसे कहता है, कि मीटिंग में ये लोग यह ' पास कर गए, कि राम मरोसे, राम मरोसे के घर में रहेगा,

---

१ नाटककार मोहन राकेश - सं.सुन्दरलाल कथूरिया - पृ.१०५

२ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक - मोहन राकेश - पृ.१०१

श्याम मरोसे, श्याम मरोसे के घर में। और बाबू लोग अपने अपने घर में रहेंगे।... अब सीधा हो जा। बहुत कुछ कर गए हैं। साफ करना है।[१]' और बहुत बडा सवाल बेजवाब रह कर एकांकी समाप्त होता है।

बीज-नाटक --

इस संग्रह में दो बीज नाटक - शायद और हं - संकलित हैं। पूर्ण नाटकों को लिखते - लिखते राकेश ने कुछ छोटे नाट्य-प्रयोग भी किए, जो 'धर्मयुग' में प्रकाशित हुए। उसमें से 'शायद' बीज नाटक 'धर्मयुग' की १२ फरवरी १९६७ की मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ तो 'हं', बीज नाटक 'धर्मयुग' की १३ अगस्ट १९६७ की मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। लेकिन राकेश ने 'बीच नाटक' संकल्पना के सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है। लेकिन इन दो नाटकों के कथ्य और शिल्प को देखते हुए यह कहा जा सकता है, कि 'आधे - अधूरे' में मूर्त परिवार विघटन, अजनबीपन, अकेलापन, मूल्य विघटन आदि बातों का संदर्भित रुपही इन दो नाटकों में बीज रुप में प्रस्तुत हुआ है। इससे कहा जा सकता है कि ये दो नाटक आधे अधूरे के 'बीज नाटक' ही है। 'बीज नाटक' इस शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में विव्दानों ने भिन्न भिन्न मत प्रकट किए हैं। डॉ.गिरीश रस्तोगी का कहना है 'समकालीन सन्त्रास को अपने लघु आवरण में समेटने की शक्ति ही मानो उसका बीज रुप है, जिसमें उसी को विस्तार देने की सम्भावनाएँ निहित है[२]।' विष्णुकान्त शास्त्री के अनुसार बीज-नाटक एक ऐसी विधा है, 'जो बीच रुप में व्यक्तियों के सम्बन्धों या स्थितियों की करालता को रेखांकित भर कर दे, जिसे बाद में भरे-पूरे नाटक के रुप में विकसित किया जा सके[३]।' 'आधे अधूरे' की तरह 'शायद' और 'हं' इन दो बीज-नाटकों में स्त्री-पुरुष के बीच मानसिक तनाव, साथ जीने की विवशता, घुटन, अपने

---

१ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक - मोहन राकेश -पृ.१०१-२

२ मोहन राकेश और उनके नाटक - डॉ.गिरीश रस्तोगी पृ.१२३

३ समीक्षा - मार्च १९७४ - विष्णुकान्त शास्त्री पृ.१६

को स्पष्ट न कर सकने की मजबूरी, अर्थहीन जीवन को ढोने की विवशता आदि बातों को स्पष्ट किया गया है।

शायद -

यह एक बीज-नाटक है और विष्णुकान्त शास्त्री के अनुसार `शायद' की रचना `आधे अधूरे' के बीज रुप में हुई है। इसमें लेखक ने मध्यवर्गीय मनुष्य का अभिशप्त जीवन असन्तुष्टता, वर्तमान जीवन की ऊब, घुटन, पेचोदगी, अकेलापन, पारिवारिक विघटन, मानवीय मूल्यों का ह्रास आदि बातों को उजागर किया है। इस नाटक में दो पात्रों का एक परिवार है, जो अपने वैवाहिक जीवन में शांति, सुख-सुविधा चाहता है, लेकिन अपने आप को असहाय महसूस कर रहा है। मध्यवर्गीय परिवार का एक वर्ग कृत्रिम सुख-सुविधाओं के चक्कर में फँसकर वैवाहिक सम्बन्धों को विवशता से ढो रहा है। शायद उनके मन में पपा-ममी बनने की चाह है, इसी लिए अपने मनको समझाने के लिए उन्होंने बिल्ली के बच्चे पाल रखे हैं।

`फिर सोचने लगे' - इस सवाल से नाटक का आरंभ होता है। इससे लगता है, कि कहीं कोई कमी है, छटपटाहट है, घुटन है, जो पुरुष को चैन से नहीं रहने देती है। स्त्री चाहती है, कि पुरुष का मन बहल जाए, इसलिए वह उसे कुछ दिनों के लिए बाहर याने सुरत आदि कहीं चले जाने की सलाह देती है। लेकिन कहीं भी जाकर क्या होनेवाला है, सभी जगहें तो एक-जैसी ही है, सभी जगह एक जैसा ही तो लगता है। इस पर पुरुष कुछ दिनों के लिए किसी पहाड पर चले जाकर बिल्कुल अकेला रहने की बात सोच रहा है। ऐसी घुटनभरी जिन्दगी में ऊब कर स्त्री भी कहती है, `हाँ, सच ... धक्के खाते फिरते हैं दिन भर ... स्कूल से बाजार और बाजार से घर ... और तुम खुश नहीं रहते फिर भी। मेरे अन्दर हर वक्त इतना दुख रहता है तुम्हें लेकर।'[१] लेकिन उदासी का कारण

---

१ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक - मोहन राकेश - पृ.१०८

बताती है कि, ' तुम्हारा मन हमेशा उन चीजों के लिए भटकता है, जो तुमसे दूर है। पास होने पर चाहे तुम उन्हें देखो भी नहीं ... पर उनका सेंक तुम्हें पहुँचता रहना चाहिए।'[१] इस तरह जिन्दगी किसी भी प्रकार की क्यों न हो, उसमें सुख जरा भी नहीं होता है। ' मैं तो सोचता हूँ, कि हर आदमी की अपनी अलग जिन्दगी होनी चाहिए ...। ... बिना घर बार के।'[२] यहाँ यह दिखाई देता है, कि स्त्री-पुरुष साथ-साथ रह कर भी, अजनबीपन महसूस करते हैं और निरन्तर दु:खी रहते हैं। इस प्रकार लेखक ने इस एकांकी के जरिए वर्तमान जीवन के संत्रास को उद्घाटित किया है।

हं:

यह दूसरा बीज-नाटक है। इस नाटक में लेखक ने विवश या रोगी व्यक्ति की शारीरिक-मानसिक अनुभूतियों को प्रस्तुत किया है। आस-पास का वातावरण, घरवाले, खुद का जीवन आदि सब स्वस्थ व्यक्ति के लिए ही अर्थपूर्ण लगते हैं, परंतु विवश और बीमार व्यक्ति को उसके सगे-सम्बन्धि भी धीरेधीरे छोड चले जाते हैं। अर्थ का सवाल आज इतना भयंकर रुप धारण कर मुँह बाएँ खडा है, कि एक बेटा भी अपने पिता को ' वेल्फेअर हाऊस ' में पहुँचाकर उनसे अपना पिण्ड छुडाना चाहता है। इस नाटक में ' पपा ' ऐसा ही एक कारुणिक चरित्र है। पुत्र- पुत्री उनका साथ छोड देते हैं अकेली पत्नी उनका साथ देती है और उनकी असाध्य बीमारी से संघर्ष करती है तथा घर भी चलाती है। नाटक में आरम्भ से ही ' पपा ' बीमार है। डॉक्टर बार - बार दवा बदल कर देखता है, फिर भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। ममा को डॉक्टर बैनर्जी भी डॉक्टर माटिया जैसा ही लगता है, जो हर बार कहता था, कि नई दवाई से अच्छी नींद आ जाया करेगी, परंतु नींद का कोई पता ही नहीं। पपा को बहुत तकलीफ होती है, उसे आराम की जरुरत है,

---

१ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक - मोहन राकेश - पृ.११०

२ - वही - - पृ.११३

लेकिन पैसे का बहुत बडा प्रश्न सामने खडा होता है । तीन साल हो गए, लडका (जहाँगीर) लंदन में है, वह एक बार भी आया नहीं, उसपर वह चिठ्ठी लिखता है, कि पपा को वेल्फेअर होम में भेज दो, क्योंकि वह अब कूडा हो गया है, उसे डस्ट बिन में फेंक देना चाहिए । इस तरह वह अपने पिता की उपेक्षा करता है । बेटियाँ भी कहने को शहर में रहती है, परन्तु महीना-महीना भर उनकी शक्ल नजर नहीं आती । और लोगों में भी कोई यहाँ नहीं आता है । धन की मदद भी कहीं से नहीं है । ममा-पपा से कहती है, कि मैं धन कहाँ से लाती हूँ, खर्चा कैसा चलाती हूँ, इसका तुम्हें कभी भी पता नहीं लगने दिया, परंतु अब मुझ से नहीं होता है । यहाँ यह स्पष्ट होता है, कि आधे-अधूरे की सावित्री की तरह ममा भी किसी तरह पैसे जुटा कर घर चलाती है । पपा भी इस जिन्दगी से ऊब गया है । अत: वह ऐसी नींद की गोली चाहता है, कि जिसे खाकर एकही बार ऐसी नींद आए, कि फिर कभी भी खुलने न पाए । यहाँ ममा बहुत ही उलझन में पडी दिखाई देतीहै, परंतु वह पपा से सहानुभूति रखती है । इस प्रकार लेखक ने यहाँ जीवन के नग्न यथार्थ की हुबहू तस्वीर खींची है ।

पार्श्व नाटक --

छतरियाँ --

यह राकेश का अन्तिम नाटक है । राकेश ने इसे मूल रुप में अंग्रेजी में लिखा था, परन्तु बाद में उन्होंने ही उसका हिन्दी में अनुवाद किया । पार्श्वनाटक ' छतरियाँ ' एक अनोखा प्रयोग है । वैसे तो रंगमंचपर अनेक पात्र आते हैं, परंतु वे सब अनामधारी हैं । यहाँ भाव तो व्यक्त किए जाते हैं अवश्य, लेकिन केवल नेपथ्य की ध्वनियों से । ' यहाँ संघ विधान की साजिशों का शिकार एक व्यक्ति बनता है और उसी के विवर्त की व्यंजना इस नाटक में प्रबल होती है, मगर उसके लिए यहाँ जिस तरह के प्रतीकात्मक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व का बंधन बाँधा गया है वह कुछ-कुछ इसी तरह का दुरुह (अर्थ गहन कह लीजिए) है ।[1] वर्तमान युग की

---

१ नाटककार मोहन राकेश - जीवन प्रकाश जोशी - पृ.९४

समस्याओं को राकेश/नेपथ्य से आने वाली विभिन्न ध्वनियों, उक्तियों और नारी-भाषणों आदि के माध्यम से व्यक्त किया है । इसमें कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि का अभाव है । वह केवल नेपथ्य की ध्वनियों के आधार पर चलता है । आज के यांत्रिक युग में मनुष्य भ्रष्टाचार, विषमताओं और अपने अस्तित्व की रक्षा में उलझा हुआ है, जो इस नाटक का केंद्रबिंदु है । आज सामान्य जनता पर राजनीति हावी हो गई है । जिससे सामान्य व्यक्ति आज समस्याओं में इतना उलझा हुआ है कि वह खुद को पहचान भी पाता । संत्रास से भरी ज़िन्दगी की उथल-पुथल का सजीव और वास्तविक चित्र लेखकने यहाँ प्रस्तुत किया है । ` आज का राजनीतिक व्यूह ( छतरियाँ ) अपने बनावटी रंगों में आदमी के अस्तित्व को इस कदर निगल रहा है, कि उसकी अपनी भाषा और अपने भाव न जाने कहाँ गायब हो गए हैं, दब गए हैं अथवा दबा दिए गए हैं और वह अपनी अस्मिता को गिरवी रख ` कठपुतली ` बन निरर्थक जीवन जीने को विवश है ।[१] ` नाटक के अन्त में आनेवाला भरत-वाक्य ही ` छतरियाँ ` नाटक की सर्वप्रमुख विशेषता है । इस भरत वाक्य का एक-एक शब्द हर सचेत आदमी के मन का प्रश्न है --

` भाषा नहीं, शब्द नहीं, भाव नहीं,
कुछ भी नहीं ।
मैं क्यों हूँ ? मैं क्या हूँ ?
जिज्ञासाएँ उठती हैं बार-बार
कब तक, कब तक, कब तक इस तरह ?
क्यों नहीं और किसी भी तरह ?
आकारहीन, नामहीन,
कैसे सहूँ, कब तक सहूँ,
अपनी यह निरर्थकता ?
जीवन को छलता हुआ, जीवन से छला गया ।
कैसे जीऊँ, कब तक जीऊँ
अनायास उगे कुकुरमुत्ते-सा ?

---

१ नाटककार मोहन राकेश - डॉ. सुन्दरलाल कथुरिया - पृ. १०५

पहचान मेरी कोई भी नहीं आज तक।
लुढकता एक ढेले-सा
नीचे, नीचे और नीचे
मैं क्या हूँ ? मैं क्यों हूँ ?
भाषा नहीं,
शब्द नहीं,
भाव नहीं,
कुछ भी नहीं।"[१]

रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि-नाटक --

- ध्वनि-नाटक -

वास्तव में नाटक एक दृश्य-काव्य है, परंतु वैज्ञानिक प्रगतिने उसे श्रव्य - सुलभ भी बना दिया है। जिसे रेडियो-नाटक के साथ-साथ ध्वनि-नाटक भी कहते हैं। आज रंगमंचीय नाटकों की अपेक्षा रेडियो-नाटक ही अधिक लिखे जा रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद ही इस विधा का विकास हुआ है। सामान्य नाटकों - चाहे पूर्ण नाटक हो या एकांकी- की तुलना में ध्वनि-नाटक का स्वरुप-विधान कुछ भिन्न होता है। ध्वनि ही इन नाटकों का मूल तत्त्व है। इनमें कुछ हेर-फेर करने के बाद ध्वनि-नाटकों को रंगमंच पर भी खेला जा सकता है। इन नाटकों में कथानक के अनुकूल वातावरण की निर्मिति, दृश्य-योजना, दृश्य-परिवर्तन और भावाभिव्यक्ति के लिए विभिन्न ध्वनियों की योजना वाद्य-यंत्रों या अन्य उपकरणों की सहायता से ही की जाती है। तथा इसमें रेल, यान, वाहन, टेलीफोन, आँधी-तूफान, वर्षा आदि विभिन्न प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग भी सहजता से किया जाता है। नाटक का यांत्रिक या यंत्री कृत स्वरुप जो दृश्य न होकर श्रव्य होता है - ही ध्वनि नाटक कहलाता है।

---

१ अण्डे के छिलके अन्य एकांकी तथा बीज नाटक - मोहन राकेश - पृ. १६०

` रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि-नाटक ` ध्वनि नाटकों के संग्रह का प्रकाशन राकेश की मृत्यु के बाद सन १९७४ में हुआ । इस संग्रह में कुल आठ ध्वनि-नाटक है, जिसमें ` सुबह से पहले `, ` क्वारी धरती `, ` दूध और दाँत ` आदि तीन स्वतंत्र ध्वनि-नाटक है, एक संस्कृत - ` स्वप्न वासवदत्तम् ` नाटक का हिन्दी रूपांतर है, एक कहानी ` उसकी रोटी ` का ध्वनि रुपांतर है, तो अंतिम ध्वनि-नाटक उनके यात्रा-संस्मरण ` आखिरी चट्टान तक ` से ध्वनियों और संवादों के बल पर तैयार किया है, ` रात बीतने तक ` वास्तव में यह एकांकी है तथा शाक्य वंश के राजकुमार नंद की कथा पर आधारित ` लहरों के राजहंस ` का पूर्व रुप है । सुन्दरी के कामोत्सव की करुण परिणति और गर्व-भंग पर आधारित इस ध्वनि नाटक को ` लहरों के राजहंस ` का ` बीच-नाटक ` कहा जाता है । ` रात बीतने तक ` और ` आषाढ का एक दिन ` दो पूर्ण नाटकों के ध्वनि-रुपांतरण है । ` आषाढ का एक दिन ` नाटक में मूल नाटक की सारी बातें वैसी ही है सिर्फ विस्तृत-रंग संकेत और ध्वनिका अधिक महत्त्व अंत:संयोजित किया गया है ।

रात बीतने तक --

यह ध्वनि नाटक ` लहरों के राजहंस ` का पूर्व रुप है, जिसमें सुन्दरी के कामोत्सव आयोजन की करुण परिणति और सुन्दरी के गर्व-भंग की कथा उद्धृत की गई है । ध्वनि-रुपक या ध्वनि-नाटक के रुप में इसका आकाशवाणी से प्रसारण भी हुआ है, परन्तु स्वरुप-विधान की दृष्टि से वह एकांकी ही अधिक है । नाटक में सुन्दरी और गौतम बुध्द के बीच सीधा संघर्ष दिखाया गया है । सुन्दरी बुध्द के उपदेशों की अवहेलना करती है । बुध्द के बढते प्रभाव का प्रतिकार करने के लिए वह कामोत्सव का आयोजन करती है, जिसके लिए साज-सज्जा और रात बीतने तक सुंदरी का नृत्य चलता रहता है । नन्द पहले तो इस मादक वातावरण में मुग्ध हो जाता है, बाद में नन्द सुन्दरी के वक्षपर सिर रख कर उसी वातावरण में रहने का प्रयास करता है । परंतु अंतर का अंधकार और बौध्द भिक्षुओं का समवेत स्वर उसके दिल को झकझोर देता है । और वह पार्थिव से अपार्थिव की ओर अग्रसर होता है । वह अपने मन का अंधकार नष्ट करने के लिए

छटपटाता रहता है और अन्त में सचमुच ही अपने मन का अन्धकार नष्ट करके भिक्षु बन कर सुन्दरी के द्वार खड़ा हो जाता है। जिससे सुन्दरी के अहं को गहरी चोट लगती है, उसका गर्व-भंग होता है और वह असहाय होकर `बुध्दं सरणं गच्छामि` में सहारा पाती है। यहाँ सब कुछ एक रात में ही घटित हुआ है। इस प्रकार इस नाटक में पार्थिव-अपार्थिव या प्रवृत्ति-निवृत्ति या अन्धकार-प्रकाश का द्वंद्व चित्रित हुआ है।

स्वप्नवासवदत्तम् --

यह इस संग्रह का दूसरा ध्वनि-नाटक है। यह मूल `भास` रचित संस्कृत नाटक है, जिसका राकेश ने हिंदी में रुपांतर किया है। मूल नाटक के अनुसार ही इसमें भी प्रसंग, पात्र और कथा का विकास प्रकट किया है। राकेश ने इसमें विभिन्न ध्वनियों और वाद्य-संगीत का प्रयोग कर इसे ध्वनि-नाटक के रुप में सफल बनाया है। भाषा की अपूर्व क्षमता और नाटकीय गति राकेश की अपनी मौलिकता है, जिसने इस नाटक को मात्र अनुवाद होने से बचा लिया है। यह नाटक राजा उदयन के लोक-प्रसिध्द कथानक पर आधारित है। यौगंधरायण उदयन का कुशल मंत्री है, जिसके बुध्दि-चातुर्य से उदयन और पद्मावती का विवाह होता है, उदयन फिर से राज्य प्राप्त करता है और वासवदत्ता को अपनाता है। इन प्रसंगों को इस नाटक में कुशलतापूर्वक सुसंगठित किया गया है।

सुबह से पहले --

यह इस संग्रह का तीसरा ध्वनि-नाटक और `रेडियो-फैंटेसी` है। रहस्यमय वातावरण और काल्पनिक घटनाओं के कलेवर से नाटक के कथानक का ताना-बाना बुना है। स्वतंत्रतापूर्व की क्रांतिकारी गतिविधियों पर नाटक का कथानक आधारित है। इस नाटक में हिंसात्मक क्रियाओं के जरिए विदेशी सत्ता को उखाड़ने की कोशिश करनेवाला `राज` जैसे लोगों का एक पक्ष है, तो

अपने प्राणों की बाजी लगा कर देश की संपत्ति को बचाने की कोशिश करनेवाला ' महेन्द्र' जैसे लोगों का दूसरा पक्ष भी है। दोनों पक्ष अपने - अपने तरीके से देश को स्वतंत्र बनाने का प्रयास कर रहे हैं। महेन्द्र और राज की भेंट तथा उनकी गतिविधियों का प्रकाशन लेखक ने यहाँ किया है। राज महेन्द्र को पुलिस से बचाना चाहता है। इसलिए राज उसे रात-भर के लिए अपने घर में ठहराता है। और उसके लिए सुरक्षित मार्ग की तलाश करने के लिए स्वयं बाहर चला जाता है। परंतु राज के माई-मामी उसे चोर-डाकू समझकर भयभीत हो जाते है और राज के वापस आने से पहले ही गलत समय बताकर महेन्द्र को घर से बाहर भेज देते हैं। राज वापस आने पर यह समाचार समझता है, तो उसे अफसोस होता है। उसके पीछे पुलिस लगे हुए है, इसलिए वह रात्री के भयपूर्ण सन्नाटे में सुबह से पहले ही फरार हो जाता है। इस प्रकार नाटक मध्यरात्री के भयपूर्ण और रहस्यमय वातावरण में शुरु होता है और उसी भयपूर्ण सन्नाटे में सुबह से पहले समाप्त होता है। इस प्रकार यह नाटक १९४२ में घटित घटनाओं की मानसिकता को प्रकट करता है।

कँवारी धरती --

यह इस संग्रह का चौथा ध्वनि-नाटक है, जो रेडिओ रुपक की श्रेणी में आता है। यह नाटक मध्यवर्गीय परिवार की स्थिति पर आधारित है, जिसमें स्वतंत्रता के बाद की नारी की परिवर्तित स्थिति और उसके गुण-दोषों का विश्लेषण किया है। रजनी नामक युवती के इर्द-गिर्द नाटक की सभी घटनाएँ घुमती है। यह एक मध्यवर्गीय परिवार की पढी-लिखी लडकी है। उसके विवाह के लिए माँ-बाप चिन्तित हैं। एक जमाना ऐसा था, जहाँ लडकियाँ घर से बाहर नहीं जाती थी, विवाह के सम्बन्ध में उनकी अपनी कोई राय नहीं रहती थी। लेकिन आज जमाना बदल गया है, मूल्यों में परिवर्तन आ गया है। माँ-बाप पढे-लिखे होते हैं, अत: वे लडकियों को कॉलेज में भेजते हैं। वहाँ उनका युवकों से संपर्क आता हैं, जिससे उनका दृष्टिकोण स्वच्छंद और स्वतंत्र बनने लगा। वे प्रेम के

नाम पर मिलनेवाले फरेब की भावुकता में अपना सर्वस्व अर्थात् कौमार्यपन की सुगंधि को लुटा देती हैं। फलत: उसका जीवन सुना और घुटन बन कर रह जाता है। लेखक ने यहाँ ऐसी युवतियों का चित्र खींचा है, जिनमें प्रेम पाने और उसके लिए बलिदान करने की ललक रहती है। इस ललक में भोली युवतियाँ शिकारी प्रवृत्ति के पुरुषों के हाथ में पड़ती हैं और तन-मन से हार कर अनचाहे मातृत्व का बोझ ढोती रहती हैं। तथा अपनी और माँ-बाप की इज्जत बचाने के लिए दर-बदर हो जाया करती हैं। भावुकता का नकली मुखौटा पहनकर अपना स्वार्थ सिध्द करने वाले युवक वर्ग की वास्तविकता को भी लेखकने यहाँ प्रस्तुत किया है। ऐसे युवक अपने अंतस् के विराट शून्य को भरने के लिए दूसरों के जीवन के मूल्य को तृणमात्र समझकर कुचल देते हैं। इस प्रकार लेखकने यहाँ यथार्थ और भावना के संघर्ष को उजागर किया है। नाटक के अंत में हुई समाज के पाप की आलोचना हमारी ओढी हुई नैतिकता को उखाड कर फेंक देती है।

उसकी रोटी --

यह ध्वनि नाटक राकेश के दूसरे कहानी संग्रह ' पहचान ' में संकलित कहानी ' उसकी रोटी ' का रेडियो रुपान्तर है। लेखक ने इस नाटक में नारी के उदार और विशाल हृदय का परिचय दिया है। सुच्चासिंह की पत्नी के अबोध और भावुक व्यक्तित्व पर नाटक का कथानक आधारित है। सुच्चासिंह पत्नी की उपेक्षा करता है फिर भी वह चिलचिलाती धुप में उसे रोटी देने के लिए जाती है। लेखकने यहाँ ' पति परमेश्वर ' वाली परम्परा को आधुनिक परिवेश में भी विद्यमान दिखाया है। तथा बालो की बहन जिन्दा के साथ जंगी चाचा के व्यवहार से जवान लडकियों पर समाज की होनेवाली बुरी नजर का पर्दाफाश किया है। इस नाटक को नई फिल्मों के आन्दोलन में सबसे पहले फिल्माया गया है। राकेश के समूचे साहित्य में मूल्य विघटन और सम्बन्धों के बिखराव का स्वर सुनाई देता है, परंतु इस नाटक में राकेश ने मूल्यों और सम्बन्धों के जुडन को प्रमुख रुप से रेखांकित किया है।

दूध और दाँत --

इस ध्वनि-नाटक में बाढ से उत्पन्न करुण नियति का हृदयद्रावक चित्र अंकित किया है। लगता है, नाटक का कथानक १९४७ में पाकिस्तान बनने के पश्चात् पूर्व पंजाब और दिल्ली में आई भयावह बाढ की पृष्ठभूमि पर आधारित है। रावी का बाँध टूट जाने से लोगों की भाग-दौड और कोलाहल के साथ नाटक का आरम्भ होता है। बाढ के प्रकोप के कारण लोग बेसहारा होकर जिधर रास्ता मिले, उधर भटकते रहते है। ऊपर से धारासार वर्षा, नीचे पानी की बाढ। गाँव के गाँव उजड हो रहे हैं। मानो सभी ओर प्रलय मच गया हो। बच्चे भूख से व्याकुल हो रहे है। कई माताएँ अपने दूध पीते बच्चों को बाढ में उनके नसीब के हवाले छोड रही है। ऐसी संकट ग्रस्त परिस्थिति का लाभ उठाकर रोटी का लालच दिखाकर शरीर खरीदनेवाले लोग, मानो नर पशु, अपनी वासनात्मक प्यास बुझा रहे हैं। आदि सभी बातों को नाटककार ने अनुभव की कसौटीपर कसकर सत्य रुप में चित्रित किया है। इस नाटक में इसर चाचा राजकरनी और प्रकाशो को बाढ से बचने के लिए बच्चों को लेकर भाग जाने के लिए कहता है। वे भाग भी जाती है। पानी पल-प्रति-पल बढता ही है। भूख से बच्चे रो रहे है। दर्शन पाशो का शरीर खरीदकर उसे रोटी देता है। राजकरनी छोटे बच्चे को दूध न दिला सकने के कारण अपने हृदय पर पत्थर रखती है और उसे बाढ के हवाले छोडकर किसी स्टेशन पर जाती है। वहाँ उसी बच्चे को फिर से पाती है और वापस अपने गाँव चली जाती है। इन्ही घटनाओं का ताना बाना नाटक में बुना गया है।

आखिरी चट्टान तक --

यह राकेश के पूर्व-रचित यात्रा - संस्मरण के संक्षिप्त रुप का रेडियो रुपांतर है। यायावर के लम्बे स्वगत से इसे एक आत्मकथा का स्वरुप आ गया है। समाज के एक विशाल परिवेश का चित्रण राकेश ने इस नाटक में किया है। इससे

लेखकने देश के विभिन्न प्रादेशिक, सतरंगी परिवेश में रहनेवालों की मानसिकता प्रकट की है। उनका सहयोग, अपनत्व, दूरत्व, विभिन्न प्राकृतिक दृश्य मार्ग में आई कठिनाइयाँ आदि . . . बातों को इसमें अभिव्यक्त किया है। साथ ही धार्मिक बंधन, रुढियाँ, अन्धश्रध्दाएँ, आर्थिक पेचीदगी आदि की भी इसमें झाकी मिल जाती है। उसके साथ इन सभी बातों का लेखकपर जो प्रभाव पडा उसकी भी झलक मिल जाती है। यहाँ प्रमुख रुप से समाज में होने वाले आर्थिक वैषम्य को प्रस्तुत किया है। एक तरफ क्रिसमिस मनाने के लिए पैसा पानी की तरह बहाया जा रहा है, तो दूसरी तरफ उस वर्ग के कुछ लोगों के पास चाय पीने या घर में मोमबत्ती जलाने तक के पैसे नहीं है। आज अर्थ ही जीवन का प्रमुख अंग बन गया है, जिसके सामने भावना, परिवार, व्यक्तिगत जीवन सब तृणतुल्य है। हुसैनी और नन्दलाल जैसे लोगों की जिन्दगी ऐसी ही है। आज के आधुनिक युग में, जहाँ वैज्ञानिक प्रगति मनुष्य को चाँद-सुरज की ओर ले जा रही है, घर से मंदिर तक की गलियों में जीवन व्यतित करने वाले श्रीधरन जैसे लोग भी विद्यमान है। कन्याकुमारी के मनोरम परिवेश में समुद्र के बीच में स्थित चट्टान पर लोग दूर-दूर से सुर्यास्त - सुर्योदय देखने के लिए आया करते है, वहाँ बेरोजगारी की विवशता लोगों को आत्महत्या करने के लिए भी खींच लाती है। इस प्रकार यायावर ने जिस व्याकुल मन:स्थिति में यात्रा प्रारम्भ की उसी मन:स्थिति में ही यात्रा का विराम भी होता है -- `इस यात्रा ने क्या मन की भटकन को कुछ शांत किया है या एक नई भटकन को जन्म दे दिया है?`[१]

---

१ रात बीतने तक तथा अन्य ध्वनि-नाटक - मोहन राकेश - पृ. १८४